www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वारासिवनी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

# साहित्यिक वेब अंक 1 से 31 मई 2026 (मासिक साझा संकलन)

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

## शब्दों की उड़ान...

यह केवल एक मंच नहीं, यह उन शब्दों की उड़ान है, आप सभी का स्नेह, सहयोग और आशीर्वाद ओ दिल से निकलकर दुनिया तक पहुंचना चाहते हैं। सादर, इस यात्रा को निरंतर ऊर्जा देता रहे।

**अन्तरा शब्दशक्ति परिवार की रचनात्मक उपलब्धि वेबसाइट पर आरम्भक किया गया और पहले ही महीने में 1 मई से 31 मई 2026 का वेबसाइट पर प्रकाशित रचनाएं**

- ★ कुल अलग-अलग रचनाकार : 248
- ★ मई में वेबसाइट में ब्लॉग में 374 रचनाएँ : 374

- साहित्य, संवेदना और सृजन का एक सफल एवं प्रेरणादायी माह।
- पिछले माह मई में 90 रचनाएँ और इस माह 97 रचनाएँ यानी 2 महीने में कुल 187 रचनाएँ लिखी गई.
- अप्रेल महीने 90 रचनाकारों ने 90 रचनाएँ लिखी
- मई में 87 रचनाकारों ने कुल 97 रचनऐं लिखी
- कुल मिलाकर 2 महीने में अप्रेल मई में 177 रचनाकरों ने कुल 187 रचनाएँ लोकर्पित कि हैं।

**अन्तरा शब्दशक्ति का मूल उद्देश्य-**

- ★ डायरी के निजी भावों को विश्व पटल तक पहुंचाना।
- ★ हिन्दी को जन-जन के हृदय में स्थापित करना।
- ★ डिजिटल युग में साहित्य को सहज, सुलभ और जीवंत बनान।

## सरप्राइज पुस्तक लोकार्पण

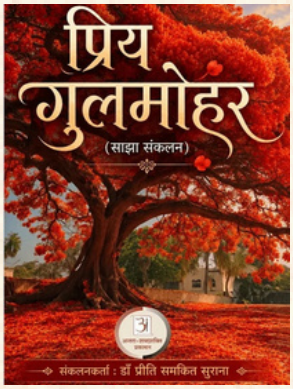


प्रिय गुलमोहर,तुम्हारे विविध रचनाकारों और विविध भावों से परिचित होते हुए बार-बार ऐसा अनुभव हो रहा है मानो तुम अन्तरा शब्दशक्ति की ही साहित्यिक अभिव्यक्ति बनकर साकार हो रही हो। तुम्हारे पृष्ठों में अनेक सृजनधर्मियों के मन, विचार, संवेदनाएँ और सपने एक साथ स्पंदित हो रहे हैं। यही सामूहिकता तुम्हारी सबसे बड़ी शक्ति बन रही है।अत्यंत हर्ष और आत्मीयता के साथ आज मैं तुम्हें ई-पुस्तक के रूप में साहित्यप्रेमियों को समर्पित कर रही हूँ। मेरी शुभकामना है कि तुम अधिकाधिक पाठकों तक पहुँचो, उनके हृदयों को स्पर्श करो और सृजन की यह सुगंध दूर-दूर तक बिखेरो।सप्रेम लोकार्पित।

--डॉ. प्रीति समकित सुराना

इन एकसाठ दिनों में देशभर के साहित्यकारों, कवियों एवं रचनाकारों ने अपनी लेखनी से साहित्यिक ऊर्जा, संवेदनाएँ और सृजनशीलता का सुंदर विस्तार किया। यह आँकड़ा केवल संख्या नहीं, बल्कि शब्दों से जुड़े विश्वास, सहभागिता और निरंतर बढ़ते साहित्यिक परिवार का सशक्त प्रमाण है।

अप्रेल मई माह में कविता, गीत, ग़ज़ल, लघुकथा, आलेख, संस्मरण, समीक्षा, शुभकामना-लेखन तथा विविध साहित्यिक विधाओं के माध्यम से रचनाकारों ने अपनी सृजनात्मक उपस्थिति दर्ज कराई। वरिष्ठ और नवोदित दोनों ही वर्गों की सक्रिय सहभागिता ने इस मंच को और अधिक समृद्ध एवं जीवंत बनाया।

यह उपलब्धि केवल प्रकाशित रचनाओं की संख्या नहीं है, बल्कि साहित्य के प्रति समर्पण, शब्दों के प्रति आस्था और रचनात्मक एकजुटता का उत्सव भी है। प्रत्येक रचना ने अपने ढंग से संवेदनाओं, विचारों और मानवीय मूल्यों को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

✓ शब्द जब सृजन बनते हैं तो साहित्य जन्म लेता है, और जब अनेक रचनाकार एक परिवार बनकर लिखते हैं तो संस्कृति समृद्ध होती है।

✓ अन्तरा शब्दशक्ति परिवार के सभी सम्मानित रचनाकारों को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ। आपके सतत सृजन, सहयोग और विश्वास से यह साहित्यिक यात्रा निरंतर आगे बढ़ रही है।

## 1 से 31 मई 2026 — वेबअंक में प्रकाशित रचनाकारों की सूची

**1 मई 2026**
- सरस दरबारी

**2 मई 2026**
- सरस दरबारी

**3 मई 2026**
- सुधा गोयल
- विभा वर्मा
- राजेश देशप्रेमी
- विवेक कविश्वर

**4 मई 2026**
- उषा श्रीवास्तव 'उषा राज'
- मधु टाक
- बुशरा तबस्सुम
- रेखा शाह आरबी

**5 मई 2026**
- चौ. मदन मोहन समर
- कृष्ण भारतीय

**6 मई 2026**
- विवेक दुबे
- प्रीति धीरज जैन 'धीरप्रीत'
- वंदना सिंह 'त्वरित'

**7 मई 2026**
- अटल कश्यप
- डॉ पवन कुमार पाण्डेय
- शैली भागवत 'आस'

**8 मई 2026**
- मुकेश कुमार सिन्हा
- पद्मा मिश्रा
- हरिवल्लभ शर्मा 'हरि'

**9 मई 2026**
- मुकेश दुबे
- गुलशन प्रेम

**10 मई 2026**
- विभा रानी श्रीवास्तव
- राजेन्द्र पुरोहित

**11 मई 2026**
- दिलीप मेवाड़ा
- विजय शंकर प्रसाद
- आरती शर्मा
- पूजा राठौड़

**12 मई 2026**
- डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त'
- चिराग जैन चैतन्य
- आशु मिश्रा

**13 मई 2026**
- प्रणव राज
- शन्नो अग्रवाल
- रीति झा
- डॉ. हरविंदर कौर होरा

**14 मई 2026**
- जानकीप्रसाद विवश
- प्राणेंद्र नाथ मिश्र
- सपना चन्द्रा

**15 मई 2026**
- अनिता रश्मि
- डॉ. राधा दुबे
- दीपशिखा सागर

**16 मई 2026**
- सीमा अग्रवाल
- देवेंद्र सिंह
- किरण मोर
- रजनी दवे
- कंचन तिवारी 'कशिश'

**17 मई 2026**
- मुकेश दुबे
- अजय श्रीवास्तव 'मदहोश'
- किशोर छिपेश्वर 'सागर'

**18 मई 2026**
- केदानाथ शव्द मसीहा
- रश्मि स्थापक
- खुशी प्रयागराज
- चुनू साहा पाकुड़ झारखंड

**19 मई 2026**
- डॉ सुनीता सुमन
- ऋतु अग्रवाल, मेरठ
- कमला अग्रवाल गाज़ियाबाद
- सुमन अग्रवाल 'सागरिका' आगरा

**20 मई 2026**
- रश्मि सहाय
- दीप्ती जैन
- विनय पंवार
- शुचि मिश्रा

**21 मई 2026**
- आकांक्षा प्रिया
- दिनकर राव दिनकर
- डॉ. कृष्ण कन्हैया, बर्मिंघम (इंग्लैंड)

**22 मई 2026**
- योगी नारायणनाथ, इटहरी (नेपाल)
- प्रदीप कुमार अरोरा, पुणे
- क़ासिम बीकानेरी

**23 मई 2026**
- संदीप नेमा 'दीप', भोपाल
- रुचि बाजपेयी शर्मा
- अनुपमा शर्मा, रुड़की
- दिलीप आचार्य 'सोमेश्वर', बांसवाड़ा
- दिनकर राव दिनकर, वारासिवनी

**24 मई 2026**
- तेजेंद्र शर्मा, लंदन

**25 मई 2026**
- शिवानंद सहयोगी, वाराणसी
- सुभाष पाठक 'जिया'
- नंदिता तनूजा, लखनऊ
- दीपिका मोयल 'दीप', जोधपुर
- एलिजा कुमारी, बेगूसराय
- कपिल कुमार, बेल्जियम

**26 मई 2026**
- * संतोष कुमार द्विवेदी
- * उमानाथ त्रिपाठी
- * दिलीप आचार्य 'सोमेश्वर'
- * पद्मा मिश्रा, जमशेदपुर

**27 मई 2026**
- डॉ. विजयानन्द 'विजय', बक्सर
- प्रणव राज, कैमूर
- प्रा. गायकवाड़ विलास, लातूर
- किशोर छिपेश्वर 'सागर', बालाघाट

**28 मई 2026**
- सपना परिहार
- सुभाष पायक 'ज़िया'
- एम. डी. एस. रामालक्ष्मी
- मुकेश कुमार सिन्हा

**29 मई 2026**
- संदीप नेमा 'दीप'
- मनोज जैन 'मधुर'

**30 मई 2026**
- प्रदीप कुमार अरोरा, पुणे
- विशाखा शिंघल
- नवीन माथुर पंचोली

**31 मई 2026**
- सीता गुप्ता, दुर्ग, छत्तीसगढ़
- विजयानन्द विजय
- रश्मि अभ्या
- अमितारवि दुबे

आपका सहयोग सादा मिलता रहे.
निवेदक :- डॉ. प्रीति समकित सुरना (संस्थापक एवं संपादक )
अन्तरा शब्द शक्ति प्रकाशन एवं संस्था
रचना भेजें ईमेल :- antrashabhshakti@gmail.com
संपर्क 9009423393

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वारासिवनी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
रविवार, 3 मई 2026

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

# तुम बहुत याद आओगे

सावन की पहली फुहारों से
पुरवाई के शीतल झोंके से
होंठों पर पहले चुम्बन से
तुम बहुत याद आओगे

आंखों में प्यारे सपने से
मीठी मीठी बातों से
हल्की प्यारी मुस्कान लिए
तुम बहुत याद आओगे

फूलों की मादक खुशबू से
सपनों में मधुमय रंग भरें
सूरज की पहली किरणों से
नभ में इंद्रधनुष से तुम
बहुत बहुत याद आओगे

भूलूं कैसे साथ तुम्हारा
जिद्दी सा आलिंगन तेरा
वह बाहों का घेरा तेरा
चुंबन की बौछारों जैसा
तुम बहुत याद आओगे।

यादों के झुरमुट सा जीवन
कनबतियां सा मेरा जीवन
दौड़े आते घन गर्जन से
पल पल घबराता मेरा मन
तुम बहुत याद आओगे।

इंतजार का पल पल डेरा
पलकों को इसने है घेरा
हट गया नींद का भी पहरा
भीगे भीगे से मेरे मन को
तुम बहुत याद आओगे।

सुधा गोयल
बुलंदशहर

# पारिजात

कुछ कच्चा सा है पारिजात
और शरद ऋतु आने को है,
क्यों कर इसका कोमल तन
फूलों का भार उठाएगा,
और शरद ऋतु अपनाएगा।

देखेगा जब बेला महका
रूप रात-रानी का बहका,
गदराया सोने सा गेंदा
पलाश से होड़ लगायेगा,
पारिजात कुछ सोचेगा।

वासंती महका प्रणय देख
भौंरे-कलियों का मेल देख,
सोलह-सिंगारी पारिजात
चंपे को जीभ दिखायेगा,
फिर खुद ही वो सकुचायेगा।

हरे आम की बौरों पर
तृष्णा जब बेसुध डोलेगी,
जूही आँचल को संवार
मौसम के होश उड़ाएगी,
कुछ पारिजात भी समझेगा।

पर जब मोहक शब्दों में
वो कांटे बबूल के देखेगा,
मेरे निश्छल से भावों में
वो विष के कतरे पाएगा,
अपने चेहरे को मोड़ेगा
क्षितिजों पर नज़र लगाएगा,
सहमा सा मेरा पारिजात
खुद अपने मे खो जाएगा।

विवेक कवीश्वर

# ठहाके

मिला है मानुष तन तो इसे सजा लो यारों,
अरे कभी तो ठहाके लगा लो यारों।
खिलखिलाती हँसी सबको भाती है
दुनिया उसके पीछे आती है,

सियासी का सरदार है वो जिंदगी का
गुलजार है वो मिले पल
तो इसे कभी गंवाना नहीं यारों,
अरे कभी तो ठहाके लगा लो यारों।

सलामती सेहत का संदेश देता ठहाका
खुश मिजाजी का फोड़ता पटाखा
ठहाके की कोई फीस नहीं होती यारों
कभी तो ठहाके लगा लो यारों।

भगवान से मिले इस सौगात को
यूं ही तुम गंवाना नहीं
मुस्कुराहट की दौलत को सदा लूटना यारों अरे
कभी तो ठहाके लगा लो यारों।

विभा वर्मा,
गाजियाबाद

# रिश्तों की डोर

रिश्तों का डोर
कच्चे धागे का छोर
कब किस बात से
चटक - भटक जायें
कहना बहुत मुश्किल
सच, कुत्ते साथ निभाते
संकट में भौंकते जरूर
मगर, रिश्तें के लोग
सिर्फ काटते - बजाते
सच, रिश्तों का डोर
कच्चे धागे का छोर
तेल पर चलते - दौड़ते
गमकते - दमकते तभी
जब चमक पाते मन लायक
सच, आज के रिश्तें
लाभ - हानि का तराजू
जहां वजन ज्यादा देखते
चट गलबहियां कर लेते
सच, रिश्ते खुशी कम
डंक - तंज ज्यादा देते।

राजेश देशप्रेमी

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वारासिवनी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
सोमवार, 4 मई 2026

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

## गीत

सम्बन्धों का बन्धन उसने पैरों में डाला ऐसे
अन्दर - अन्दर टूट गई हूं मोती की माला जैसे

कर्मभूमि के पावन पथ पर पूर्ण समर्पण है मेरा
अनुशासन संदेश सिखाता वो जो दर्पण है मेरा
हर सांचे में ढल जाती हूं जिसने भी ढाला जैसे
अन्दर -अन्दर टूट गई हूं मोती की माला जैसे।

सम्बन्धों का बन्धन उसने पैरों में डाला ऐसे
अन्दर -अन्दर टूट गई हूं मोती की माला जैसे।

फुलवारी से फूल चुराने इक दिन आया सौदागर
जज़्बातों से खेले जैसे ठगने आया बाजीगर
तोड़-तोड़के कलियां कुचले हृदय चुभे भाला जैसे
अन्दर - अन्दर टूट गई हूं मोती की माला जैसे।

सम्बन्धों का बन्धन उसने पैरों में डाला ऐसे
अन्दर - अन्दर टूट गई हूं मोती की माला जैसे।

धैर्य और मर्यादा की मूरत सी अब गढ़ना होगा
रेगिस्तानी थारों में भी फूल मुझे चुनना होगा
सारे ग़म को पी जाती हूं घूंट -घूंट हाला जैसे
अन्दर - अन्दर टूट गई हूं मोती की माला जैसे।

सम्बन्धों का बन्धन उसने पैरों में डाला ऐसे
अन्दर - अन्दर टूट गई हूं मोती की माला जैसे।

विश्वासों की चादर जर्जर तुरपाई दिल से करना
नेह दीप की बाती बनके घर की चौखट पे जलना
बूटे - बूटे टांक रही हूं सूई में धागा जैसे
अन्दर - अन्दर टूट गई हूं मोती की माला जैसे।

सम्बन्धों का बन्धन उसने पैरों में डाला ऐसे
अन्दर - अन्दर टूट गई हूं मोती की माला जैसे।

**उषा श्रीवास्तव**
**"उषाराज "**
**गाज़ियाबाद,उत्तर प्रदेश**

## बोनसाई स्त्रियां

अक्सर स्त्रियां सपाट गमलों में
बोनसाई की तरह
बोई और उगाई जाती है।

जिनको पुरुष जितना चाहता
उतना ही बढ़ने देता है
पनपने देता है
अगर निकलने लगती हैं
गमलों से बाहर
पत्तियां शाखाएं फुनगिया तो
उन्हें बेदर्दी से कतर दिया जाता
अपने अधिकारों की कैचियो से ।

नहीं देख सुन पाता
पुरुष अपने ..
मर्दानगी के गुरुर में
उन नयी निकलने वाली
पत्तियां, शाखाएं, कोपलो के
कतरने की मर्माहत आह।

पुरुष नहीं देख पाता
अपने से ज्यादा
पुष्पित पल्लवित
उनकी शाखाएं
वह घिरने लगता है
कमतरी के एहसास में ।

और बोनसाई बनकर स्त्री
कसमसा कर रह जाती
तड़पकर रह जाती ।

**रेखा शाह आरबी**

## ख्वाहिश

ज़िन्दगी की तमाम ख्वाहिश मिटा दी मैंने
तुझे मोहब्बत की परिभाषा सिखा दी मैंने

आसान नहीं है ज़मीं पर चाँद उतार लाना
नन्हे चिराग़ से तेरी देहरी सजा दी मैंने

तुझे पाना हसी मक़सद है ज़िन्दगी का
तू रहे कहीं भी तुझे याद दिला दी मैंने

उसके होने से चलती है अब साँसें मेरी
वो जो बिछड़ा तो अपनी उम्र घटा दी मैंने

न लब हिले न इज़हार ए इश्क़ किया
बेज़ुबानी से इश्क़ की रस्म निभा दी मैंने

तेरी यादों को सिक्कों में ढालकर रख लिया
सुनने को तेरी खनक गुल्लक गिरा दी मैंने

इल्म नहीं तुझे अपने ही रंग ए नूर से
तसव्वुर से तेरी रूह को गुलाबी बना दी मैंने

दिल एक है तो बार बार क्यूँ लगाया जाए
इश्क़ निस्बत है खुदा की सारी उम्र लुटा दी मैंने

चाँ की देहलीज पर दिल रख आई हूँ
एक बुतपरस्त से मधु उल्फत निभा दी मैंने

**मधु टाक**
**इन्दौर**

## कविताएं ...

वक़्त के साथ
तासीर खो बैठती हैं
कविताएं ...
शाम की उदासी
नहीं जंचती
सुबह के शुरूआती उजास में ...
वसंत का उल्लास
कैसे लिखूं
जब फैल जाए
ग्रीष्म का ताप ...
क़लम की काहिली से
मन के बदलते मौसमों में
बिखर जाने वाली
कविताएं
शनैः-शनैः बन जाती हैं
नयी रचनाओं का पैबंद
तो सनद रहे ...
जब लिखूँ कुछ नया
तो तलाश लेना
जो वक़्त रहते
नहीं कहा

**बुशरा तबस्सुम**

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वारासिवनी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
मंगलवार, 5 मई 2026



# "सूरज आँख दिखाता क्यों है"

मचा हुआ है कहर ताप का।
जाने किसके कटु श्राप का।

अभी याद है कुछ दिन पहले,
मेरे बालों की रंगत को,
डाई की थी नहीं जरूरत।
रौबीली थी मेरी सूरत।
सूरज तपन लिए आता था।
अपना रूप दिखा जाता था।
थोड़ी आँख तरेरा करता
हल्की सी हुंकार लगा कर
और स्वेद से बदन भिगोकर
संझा से कुछ पहले-पहले
अपनी सारी तीख-तल्खियां
यहीं छोड़ कर मुस्काता था
कभी नहीं वो झुंझलाता था।

उसके भी थे तोड़ बहुत से
पीपल बरगद अमराई थी
नदिया की भी शरणाई थी
कुआं एक सदा तर रहता
रस्सी-रस्सी ऊपर बहता
मंदिर की दालान बहुत थी
जहां तपन का वास निषेध था
अपना सोलह फिट से ज्यादा
ऊंची दीवारों से सज्जित
घर ही लू के लिए अभेद था
क्या मजाल थी रोशनदानों
से सूरज का गुस्सा झांके
और सुनो फिर दादा जी ने
हर खिड़की पर पहरा देते
खस के बुने सलीके वाले
ठंडे-ठंडे पर्दे टाँके

नीम लगी थी परछट्टी में
आंगन में अमरूद सात व
पिछवाड़े में आम पांच थे
उनके मिठुआ गोला आमन
और अचारी हरा नाम थे

न पंखा ना कूलर कोई
फ्रिज का केवल नाम सुना था
ऐसी तो बस गूढ़ रहस्य था
एक बीजना चार जनों पर
ठंडा करने को मटका था
इन सबने मिल दोपहरी के
सूरज को औंधा पटका था।

धीरे-धीरे सबकुछ बदला
बिन आहट पदचाप किये कुछ
सिर के बाल हुए विरल से
पके हुओं पर डाई चुपड़ी
पता नहीं कब इस दूरी में
छत सोलह से दस पर अटकी
बिजली आई पंखे लटके
परदों ने दम तोड़ दिया गिर
कूलर जगह सम्भाले बैठा
और बढ़े जब थोड़ा आगे
कमरे-कमरे ऐसी आया
जिसने भीतर कूल किया पर
बाहर उससे डबल तपाया

पीपल वाला चौक हमारा
गांधी सर्कल में बदला है
पत्तों के पतझड़ को पक्की
साफ सड़क सम्भाले कैसे?
इसीलिए पीपल गायब है
किये तकादे आग खड़ी है
बोलो उसको टाले कैसे?
घिरा हुआ था शहतूतों से
दसवीं तक स्कूल हमारा
कालिज बनते-बनते उसके
शहतूत सभी नीलाम हो गए
कीड़ों से बदनाम हो गए
अस्पताल की नीम पुरानी
कॉम्प्लेक्स की भेंट चढ़ी है
जिससे उसकी आय बढ़ी है।
मंगल भवन बनाने हेतु
बरगद हुआ अमंगल कारी
अमराई में लगे आम सब
कालोनी के लिए कटे हैं
कुर्सी के पटिये बनने को
पंचायत से जिलाधीश के
दफ्तर-दफ्तर खूब बंटे हैं।
हैलोजन की चकाचौंध में
छत पर चाँद नहीं आ पाता
इसीलिए अब सूरज हमको
तप-तप कर है आँख दिखाता

चौ.मदन मोहन समर

चौड़ी सड़कें ऊँचे टॉवर
हर सिगनल पर हांव-हांव है
नदी समन्दर आसमान में
उन्नत होती कांव-कांव है
ग्रीन बेल्ट की ऐसी-तैसी
टीले हरी पहाड़ी वाले
डम्फर में भर-भर कर आए
पता नहीं ये कहाँ समाये
कहते हैं कुछ ऊँचे कद ने
अपनी जेबों नोट फँसाये

कितना सहन करेगी धरती
रोज हो रहे घाव करोड़ों
आखिर सूरज से इसकी भी
कुछ तो रिश्तेदारी होगी
किसी हृदय के टुकड़े जैसी
यह भी उसको प्यारी होगी।
व्यथा देखकर वसुंधरा की
सूरज खुद बेहाल हुआ है
हम पर इतना लाल हुआ है
रहो नापते डिग्री में तुम
उसका पारा नहीं रुकेगा
जब तक यह इंसान धरा से
क्षमा मांग कर नहीं झुकेगा

लेना हो तो ले लो अपने
आँगन से ही कोई नसीहत
अब यह तुम पर ही निर्भर है
क्या करना है तुम्हे वसीहत
जलती धरती तपता सूरज
बेचैनी से भरे ग्लेशियर
और समुंदर की ललकारें
या फिर सुखी बनाने कल को
हरी वसुंधरा धूप सुनहरी
छै ऋतुओं के गान सुमङ्गल
सही समय पर ले बाँसुरिया
हमें सुनाने सभी पधारें

वक्त नहीं है पास तुम्हारे
यह निर्णय तत्काल करो तुम
सूरज को मत लाल करो तुम
कुछ ऐसा जीवन अपनाएं
आओ अपनी धरा बचाएं

# चल मुँगेरी दौड लगा ले !

कभी नींद में लगा चीख़ने-
कभी खुशी से है बेहाल!
बडे मज़े के सपने देखे-
अपना रोज मुँगेरी लाल!

उसने देखा जो टूटा था, बारिश में-
उसका छप्पर;
गवर्मेंट ने नया बनाकर, सौंप दिया है-
पक्का घर;

कंधा थपका कर राजा ने-
कहा- रखेंगे खूब खयाल!

गंदे कपड़ों वाले बच्चे, सजे हो गये-
खिलता फूल;
टाई- शाई बाँध के बस्ता, वो जाने को-
हैं स्कूल;

दिल फँस गया गले में आ के-
यों ख़ुशियों ने, भरी उछाल!

बाढ़ लील गयी खड़ी फ़सल को पड़ गये-
खाने के लाले;
चुटकी मारी, ढेर मुआवज़ा, ले आये-
बीमा वाले;

इसको कहते हैं अच्छे दिन-
राजा ने कर दिया कमाल!

तभी पीठ पर धौल पड़ी एक, सर तक-
देख चढ़ी है घाम;
रोटी की कुछ चिन्ता कर ले, जा के-
पकड़ दिहाडी काम;

खुली नींद सर पकड़ मुँगेरी
फुस्स दूध का हुआ उबाल!

वही घूरता हुआ सबेरा उखड़ी चप्पल-
टूटी खाट;
चल मुँगेरी दौड लगा ले फ़र्र हुए सब-
झूठे ठाठ;

है नसीब ही चिथड़े चिथड़े-
वही भुखमरी वही अकाल!

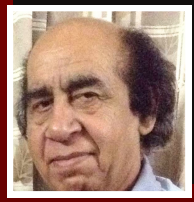

कृष्ण भारतीय

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वारासिवनी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
बुधवार, 6 मई 2026

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

## कविता

जब भी
लोग मुझसे मिलते हैं
मै देखकर उन्हें
मुस्कुरा देती हूँ
फूलों के पंखुड़ियों की तरह
देखकर जवाब में
उनका मुरझाया चेहरा भी
खिल उठता है
फूलों से सजी वाटिका की तरह
सरल नहीं होता
यूं किसी को देखकर मुस्कुराना
क्योंकि तब तुम्हारी मनोदशा
कैसी भी हो
पर ऐसा करने से
आत्म संतुष्टि मिलती है
वो पल जब कोई तुम्हे भी
प्रत्युत्तर में अपना
खिलखिलाता हुआ चेहरा देता है
वो नियति के किसी
पुरस्कार से कम नहीं होता
जिसे पाने के लिए
तुम्हे कितने प्रयत्न करते होते हैं
कई बात अपने
दर्द को हृदय की पीड़ा को,
अपने ही
हृदय भित्ति पर दबाना होता है
तब अधर मुस्कुराते हैं
पल भर की खुशी के लिए
भुलाना पड़ता है
जीवन भर पीड़ा.....

⟶ वंदना सिंह 'त्वरित'

## संवेदनशील साँसें

संवेदनशील साँसें मेरी, सुनती हर आहट हैं,
दर्द किसी का देख सकें, ऐसी इनकी चाहत हैं।

जब भी कोई टूटे मन से, चुपके अश्रु बहाता है,
मेरे भीतर कोई दीपक, धीरे-धीरे जल जाता है।

सूखी धरती रोती देखूँ, मन बादल बन जाता है,
पीड़ा की हर रेखा पर फिर, स्नेह कमल खिल जाता है।

रूठे चेहरों की चुप्पी में, शब्द करुणा बोती हैं,
संवेदनशील साँसें मेरी, सबकी पीड़ा ढोती हैं।

नफरत की आँधी आए तो, प्रेम सुगंध बिखेरें ये,
पत्थर जैसे दिलों में भी, कोमल धड़कन फेरें ये।

जीवन का सच्चा सौंदर्य, धन वैभव में कहाँ बसें,
मानव वही महान बने, जिसकी संवेदनशील साँसें।

⟶ विवेक दुबे सागर मध्य प्रदेश

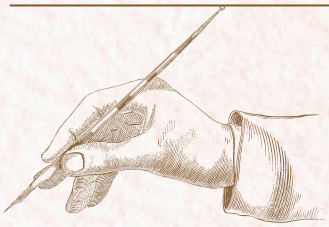

## सुन सको तो सुनो खामोशी मेरी

जल्दी क्युं है जाने की, अभी तो बाकी सारी रात है।
मिलन की सुहानी घड़ी आई,बेताब से
दिल के जज़्बात है।

उजालों की जुस्तजूं लिए, लिए मिलन की चाह दिल में।
मिल जाएगी हमें जीने की वजह,गर हाथों में तेरा हाथ है।

शीशे में संवरने की तेरी दिलकश अदा, पहले अपना अक्स देख।
दिखा देता है सच्चाई आईना, क्या तेरी मेरी औकात है।

गौर से ना देख, सुन सके तो सुन खामोशी मेरी।
मेरी शायरी का तू नूर, तेरी ग़ज़लों में कहां वो बात है।

पता मालूम नहीं तेरा, किसी हंसीन शाम को मिलने की तमन्ना थी।
आए भी और चल दिए सनम,अधूरी हमारी ये मुलाकात है।

गुज़रता है करीब से तेरा खयाल, अल्फ़ाज़ लबों पर आकर ठहरते हैं।
खयाल बनकर यूं ना यादों से गुज़र, मेरी ग़ज़लों में तू मेरे साथ है।

⟶ प्रीति धीरज जैन "धीरप्रीत", इंदौर मध्यप्रदेश

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वारासिवनी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
गुरुवार, 7 मई 2026



## कविता

ग़मों में भी अक्सर ख़ुशी देखती हूँ
मैं कुछ इस तरह ज़िन्दगी देखती हूँ

कभी देखती हूँ उन्हें, मुझपे मरते
कभी उनकी मैं बेरुखी देखती हूँ

कमी तो नहीं है किसी चीज की अब
मगर फिर भी है कुछ कमी, देखती हूँ

ख़ुशी बाँटने से ख़ुशी गर मिले तो
ज़रा बाँट कर मैं ख़ुशी देखती हूँ

यूँ वैसे सभी मुस्कुराते हैं लेकिन
दुःखी है हर इक आदमी देखती हूँ

यही मुश्किलें कल भी थीं औरतों की
यही मुश्किलें आज भी देखती हूँ

यही सोचती हूँ कि क्या होगा आख़िर
कली जब कोई अधखिली देखती हूँ

- शैली भागवत 'आस

## ग्रीष्म ऋतु के प्रकोप

आग उगल है रवि रहा, गर्मी हुई प्रचण्ड।
शीतल हो यह तन कहाँ, बचा नहीं भूखण्ड।।

वृक्ष सघन भी अब नहीं, दे पाते हैं छाँव।
पशु पक्षी भी ढूँढते, अपना-अपना ठाँव।।

ताल, नदी पोखर नहर, सूख हुए जलहीन।
विकल प्यास से सब हुए, प्राण गँवाती मीन।।

निर्मम अति ऋतु ग्रीष्म की, झुलसाती है धूप।
विनय करें दिनकर सभी, तजो उग्र यह रूप।।

डॉ पवन कुमार पाण्डे

## मनस्थिति"

पता नहीं, नयी कंपनी, नये लोग, सब कैसे होंगे?
क्या मैं वहाँ सेट हो पाऊंगा, कब तक वहाँ नौकरी खिच पायेगी आदि-आदि?
इसी उधेड़बुन में ट्रेन की स्लीपर क्लास की खिड़की से झांकते हुए दौड़ती ट्रेन और समानांतर पीछे छूटती पटरियों को देखते हुए अटल सोच रहा था।
नयी नौकरी बड़ी जद्दोजहत के बाद मिली थी कुछ कम पैसों में समझौता करके। न चाहते हुए भी अनिच्छा से उसने उस कंपनी के ऑफर लेटर को स्वीकार किया था क्योंकि घर में सात माह बैठकर उसे नौकरी की कदर अच्छे से मालूम हो गयी थी।
धर्मपत्नी ने उसके सारे कपड़े और रोजाना की जरूरतों का सामान दो सूटकेसों में पैक कर दिया था।
उसने भी अभी अकेले जाकर नौकरी ज्वाइन करने के बाद परिवार को नये शहर में शिफ्ट करने का सोचा था क्योंकि उसे पता था कि नयी नौकरी में शुरुआत में छुट्टी और कंपनी के नये माहौल में जमने की बहुत झंझट होती है।
अटल अभी भी अपनी पुरानी विदेश की नौकरी को याद कर रहा था, कितना सुकून और पैसा सब कुछ था पर एक झटके में ही कंपनी आर्थिक तंगी के कारण बंद हो गयी और उसे न चाहते हुए भारत वापिस आना पड़ा।
उसे भी अहसास था कि भारत में उसे इतना पैसा, सुकून और कैरियर के ढलान पर शायद ही कोई कंपनी उसे मौका दे।
उसके इस अहसास को जल्द ही वास्तविकता का रंग मिल गया जब सात माह बैठकर बड़ी मुश्किल से उसे यह जॉब समझौता करके मिला।
उसने अपने जरूरी खर्चो कि लिस्ट बनाकर और पत्नी से विस्तृत चर्चा के बाद अपनी भारत में नौकरी की नई पारी की आखिर में शुरुआत कर दी।
कंपनी भी छोटी थी, न कोई कैंटीन, न कोई स्टाफ-बस, न कोई सुबह-शाम की चाय।
बस ढ़ेर सारा काम और देर शाम को काम का हिसाब। मालिक भी ऑफिस में लगातार बैठे सीसीटीवी से निगरानी करता रहता, मजाल कोई रत्तीभर भी काम में ढिलाई कर दे।
सैलरी भी अब विदेश की सैलरी के उलट माह की दस तारीख को आती और वह भी आने के बाद एक दिन में साफ हो जाती।
रात को रोज सोने के पहले वह सोचता- कब तक ऐसा करना पड़ेगा, कब तक यह सब खींचना पड़ेगा?
यह सोचते-सोचते कब आँख लग जाती और सुबह फिर उसी रूटीन में शामिल होने के लिए वह घर से निकल जाता।
पर कहते है कि खुद के बनाए प्रश्नों के उत्तर भी खुद के द्वारा तैयार किए होते है।
वह अब भलीभांति समझ गया था कि उसकी मन की उलझन को सुलझाने का हल सिर्फ उसी के पास है अर्थात समस्या भी वह खुद है और हल भी वह खुद है।
आज अटल खुद को हल्का महसूस कर रहा था उसने अपनी वर्तमान परिस्थिति को देखकर अपनी मनस्थिति बदल ली थी और नौकरी उसे अब झंझट की बजाय एक जिम्मेदारी लग रही थी।
वह अब मोबाइल पर पत्नी का नंबर डायल कर रहा था,
और सुनाई पड़ रहा था अगले हफ्ते घर आने के लिए और
नये शहर में शिफ्ट करने के लिए घर का सामान पैक रखने के लिए।

**अटल कश्यप, भोपाल (म.प्र.)**

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वारासिवनी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
शुक्रवार, 8 मई 2026



## प्रेम का प्रौढ़ होना

प्रेम प्रौढ़ हो जाता है
जब सूरत की जगह
सीरत ठहरकर देखी जाती है।

खूबसूरती तब
आईने में नहीं,
दिन के अंत में थके चेहरे की
सच्ची मुस्कान में मिलती है।

जब साथ,
सिर्फ साथ नहीं रहता,
बल्कि आदत बन जाता है,
और आदत
धीरे-धीरे ज़रूरत।

मेकअप से ज़्यादा
ड्रेस नहीं,
उस ड्रेस में सिमटी सहजता भाती है,
और खुशबू, वो
किसी परफ्यूम की नहीं,
साथ बिताए वर्षों की हो जाती है।

आँखें चार नहीं रहतीं,
कुल आठ हो जाती हैं
दो देखती हैं दुनिया,
दो पढ़ती हैं मन,
और दो-दो आँखें
एक-दूसरे के भीतर
घर बनाने लगती हैं।

पावर वाले चश्मे में भी
खिलखिलाहट उतर आती है,
जब धुंधले अक्षरों के बीच
एक-दूसरे का नाम
स्पष्ट दिखता है।

प्रेम प्रौढ़ता में
संपन्न नहीं होता,
पूर्णता पाता है
जहाँ चाहत
शब्दों से उतरकर
जीवन बन जाती है।

और तब, हाँ तब
प्रेम
कहा नहीं जाता,
बस
जिया जाता है।

मुकेश कुमार सिन्हा

## मेहनत पर भरोसा

आग बरसाती,तपती दोपहरी,
घसीटते हुए पाँव, नंगी सड़क पर,
माथे पर नेनुआ ,बैंगन, लौकी की फसल लादे,
चलती जा रही है सुगिया,
पल पल बहता है माथे पर पसीना,
एक हाथ पल्लू सँभालते,
दुसरे से थामे बांस की टोकरी,
.मिल जाये शायद सांझ तक,
दो जून रोटी,और भात का जुगाड़,
बात जोहता होगा -हरिया,
खाली चूल्हे पर पानी खौलती,
निहारती होगी -उसकी मुनिया!..
-''माँ अभी लौटेगी,भात पकाउंगी,
सब मिलकर खायेंगे''
लौटती है माँ, पर टोकरी आधी खाली है,
..कुछ कम ही चावल खरीदे हैं,
''पर अपनी मेहनत के हैं,''
चूल्हे पर भात पकाती सुगिया,
बड़े संतोष के साथ, प्यार से खिलाती है,
''बच्चे खुश हैं...''
पर उसके लिए हांडी में भात कम है,
कच्चा प्याज तोडती,
नमक मिर्च के साथ -
खुद को भात परोसती,
फिर पेटभर पानी पीती सुगिया,-
खुश है -''क़ि पानी का मोल नहीं लगता''.
कल की 'भूख' का क्या होगा?, चिंता नहीं उसे..
वह खुश है' क़ि मिल गया भात आज पेट भर,
''नींद तो आयेगी ..रात भर''.
कल का सूरज फिर आग बरसायेगा,
पर वह माँ है,---
अपनी मेहनत पर भरोसा है उसे,
कल फिर कुछ सब्जियां बेच लेगी,
'',बच्चों को भूखा नहीं रखेगी'',
-''पर उनका कल, उनका भविष्य क्या होगा?
नहीं जानती वह-,
सुबह से साँझ तक,
पेट भर रोटी का जुगाड़ लगाती,
इन ग़रीबों की दुनिया का सूरज--
-''सिर्फ रोटी है''
चाँद की चमक में कौंधती है ,
-''महक भात की''
-''आज तो जी लें, कल किसने देखा है?'

पद्मा मिश्रा

## ज्यों ही महकी याद पिया की..

फूट पड़े खुशियों के सोते, सूखे सावन में।
ज्यों ही महकी याद पिया की, अनुरागी मन में।
**
आधी रात टिटहरी बोली, निर्जन राहों में।
छेड़े सरगम झांझर कंगन, चूड़ी बाहों में।
जुही नेह की झरी पुलक कर, उर के आँगन में।
ज्यों ही महकी याद पिया की, अनुरागी मन में।।1।।
**
आँखें भरीं वारुणी के घट, किंचित मदरायी।
हृदय पटल पर फागुन उमगा, झूमे अमराई।
वासन्ती दहके पलाश हैं, सुधियों के वन में।
ज्यों ही महकी याद पिया की, अनुरागी मन में।।2।।
**
निशिपति की पाती पाते ज्यों, कुमुद लगी खिलने
चली तोड़ तटबन्ध नदी हो, सागर से मिलने।
अंग अनंग तरंगित तन मन, झूमें नर्तन में।
ज्यों ही महकी याद पिया की, अनुरागी मन में।।3।।
**
साथ तुम्हारे गुजरे पल ही, सम्बल देते हैं।
विरह धूप में बट सी छाया , शीतल देते हैं।
बाट जोहते नयन बिछे हैं, आशा दर्शन में।
ज्यों ही महकी याद पिया की, अनुरागी मन में।।4।।

*हरिवल्लभ शर्मा 'हरि'

# पल पल दिल के पास,...

मालवा में दिसम्बर जाए और मावठा न आये, मुमकिन ही नहीं है।

जाते साल को विदा करते हुए बदलियों की आँखें भर आती हैं। टिप-टिप बरसती बूँदों को पोंछने के लिए बदली जब आँचल बन जाती है, धूप तुम्हारी खिलखिलाहट सी बिखर जाती है।

आते हुए साल के इस्तकबाल में सीली हवा की सिहरन कंपकंपी बन जाती है लेकिन जब तुम्हें होस्टल के गेट पर छोड़कर मैंने बाइक स्टार्ट की थी और मेरी पतली सी स्वेटर देख तुमने सर्दी से बचाने के लिए मेरे कानों से लपेट दिया था, तुम्हारे उसी स्ट्रॉल की हरारत से ठिठुरन दूर भाग जाती है।

कॉलेज के कैंटीन में गर्म चाय के भाप उगलते कप से हाथ गर्म कर बर्फ हुई नाक को छूना या समोसे लेने के बहाने भट्टी के पास देर तक खड़े रहना... कोहरे की चादर में बाइक चलाते हुए हाथों का जम जाना और चुपके से नज़दीक आकर उँगलियों गर्दन पर लगाना और तुम्हारी वो 440 वोल्ट से लगे करंट वाली रिएक्शन... गालियाँ सुनकर मेरा मुस्कुराते हुए माफी माँगने के लिए कान पकड़ कर सिर झुकाना...

आज फिर अतीत की उस किताब के पन्नों को हौले-हौले पलटाना... लगता है तुम यहीं आसपास हो।

क्लास, बंक कर यूनिवर्सिटी के पीछे रिसर्च फॉर्म की सिंचाई वाली नहर में पैर डालकर बैठना और तुम्हारा पानी में काग़ज़ की नाव चलाना।

जंगल जलेबी गिराने के लिए पत्थर से निशाना लगाना और टूट कर गिर जाए तो उठाने के लिए रेस लगाना...

आज भी गुजरो उस पगडंडी से तो लगता है तुम साथ हो।

एक रुमाल है आसमानी रंग का जिसपर तुमने सुर्ख़ और सब्ज रंगों से फूल-पत्ती बनाई थीं। धागों से बने उस गुलाब को महकाने के लिए टी-रोज़ परफ्यूम छिड़क दिया था। कब की उड़ गई वो खुशबू मगर आज भी लगता है महक रहा है गुलाब, या तुम आसपास हो और तुम्हारे पैरहन से आ रही है खुशबू वही गुलाबों वाली।

कुछ फूल और हैं, जिन्हें तुम डॉयरी में दबा देती थीं, सूख गये लेकिन कुछ रंग बाकी हैं । अशोक की पत्तियाँ हैं जिन्हें तुम विद्या कहती थीं, उठाने में बिखर ना जाएँ इसलिए बड़े एहतियात से बिना छुए देखता हूँ, फिर वापस उस किताब को बंद कर देता हूँ जिसके हर दूसरे पन्ने पर तुम्हारा नाम लिखा है।

जब इतना सामान है मेरे पास तो कैसे मान लूँ तुम नहीं हो। तुम हो सूरज की किरण में, हवा की सरसराहट में, फूलों की खुशबू में, तन्हा चाँद में और मेरे आसपास की हर शय में...!

मुकेश दुबे, सीहोर (म.प्र.)

# कब तक बच्चे बने रहोगे?

एक दिन ज़िन्दगी ने मुझसे अचानक कहा
“कब तक बच्चे बने रहोगे?
अब थोड़ा बड़े भी हो जाओ...”
सोचा, शायद यही ठीक होगा।
कुछ कोशिश भी की मैंने
बड़ों जैसे कपड़े सिलवाए,
दाढ़ी भी बढ़ा ली,
चेहरे पर गंभीरता के भाव सजा लिए।
पर ये क्या...?
दिमाग जाने कहाँ भटकने लगा।
लोग मुझे छोटे दिखने लगे,
अकड़ कंधों पर चढ़ आई,
ज़बान कुछ सख़्त हो गई।
शोर करते बच्चे खलने लगे,
हँसते हुए लोग पागल से लगने लगे।
सोचने लगा
“इनको और कोई काम नहीं क्या?”
सबको पीछे छोड़कर
किस मंज़िल की तलाश है मुझे?
ऐसी ऊँचाई,
जहाँ मेरे सिवा कोई और न हो?
क्या यही आगे बढ़ना है
अपनों को पीछे छोड़ देना?
अचानक...
माथे पर पसीने की बूँदें,
दिल में अजीब-सी घबराहट।
चौंककर उठ बैठता हूँ।
हाथ दिल पर रखकर कहता हूँ —
मैं जैसा हूँ, वैसा ही सुखी हूँ।
मुझे मासूमियत में ही सुकून मिलता है।
मैं बस बच्चा ही बना रहना चाहता हूँ...
हाँ
मैं बस बच्चा ही बना रहना चाहता हूँ।

गुलशन प्रेम

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वारासिवनी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
रविवार, 10 मई 2026



# "एकलव्य का पर्याय"

## साक्षात्कार – प्रश्न विभा रानी श्रीवास्तव जी के और उत्तर राजेन्द्र पुरोहित ज़ी जोधपुर के

**जब तक पन्ने पर भावों का सैलाब फैला नहीं लेती, तब तक वह मन को नियमन में रहने के काबिल नहीं छोड़ती है। तोड़ जाती हैं, लेखनी को काबू करने वाली सारी ज़ंजीरों के तालें, भावनाएँ जब उफनती हैं तो। जहाँ तक उन्हें मैंने जाना है, बेहद संवेदनशील और अति भावुक इन्सान हैं राजेन्द्र पुरोहित जोधपुर निवासी। साहित्यकार होने के लिए संवेदनशील होना पहली शर्त भी तो है। समाज में फैली विसंगतियों के निदान हेतु छटपटाता दिल दिमाग से एक दिशा निर्देश प्रस्तुत कर सके। जिस तरह मिथक कथा का एक पात्र एकलव्य द्रोणाचार्य की मूर्ति को अपना गुरु मानते हुए अपने शर को साधता है ठीक उसी तरह अपने गुरु बाबा, लघुकथा के पुरोधा डॉ. सतीशराज पुष्करणा के लिखे शब्दों से मार्गदर्शन पाते हुए राजेन्द्र पुरोहित की लेखनी लघुकथा लेखन पर चलती रहती है! समृद्ध मूल्यों के संवर्धन हेतु उनकी लेखनी दौड़ती है। हम हमेशा अवाक रहते हैं उनके लेखन को पढ़कर! बहुत कम समय में उन्होंने बेहद श्रमकर अपनी लेखनी को माँजा है। उनकी लिखी लघुकथाएँ शीर्षक, शिल्प, सौंदर्य, कथ्य, और संप्रेषण, उद्देश्य की दृष्टि से अपेक्षाकृत महत्वपूर्ण और प्रभावशाली हैं। विश्व पुस्तक मेला, दिल्ली में उनकी लिखी लघुकथा की प्रथम पुस्तक 'महासागर की बूँद' लोकार्पित हुई है। उनको शुभकामनाओं के संग बधाई देती हुई लेख्य मंजूषा की संस्थापक और अध्यक्ष विभा रानी श्रीवास्तव की बातचीत की झलक :-**

**01.**
**प्रश्न :—** पुस्तक हमेशा पाठक के लिए महत्वपूर्ण होती है यह कैसे साबित हो सकता है?
**उत्तर :—** जो पुस्तक पाठक को पसंद आए, उसे वह सहेज कर रखता है। प्रसंग आए, तो उस पुस्तक के उद्धरण काम में लेता है। पुस्तक उस अगरबत्ती के पैकेट की तरह है, जिसे न जलाया जाए, तो भी कमरे में महक रहती है। मानव इतिहास में जितनी भी क्रांतियाँ हुई हैं, उनमें पुस्तकों की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है।

**02.**
**प्रश्न :—** एक पुस्तक को पूर्ण रूप से पढ़ने के बाद लेखक या लेखिका कितनी सफल है इसकी पैमाइश क्या हो सकती है?
**उत्तर :—** पाठकों की प्रतिक्रियाएँ तथा आलोचकों के बिन्दु। पुस्तक पढ़ने के पश्चात यदि पाठक अपने आपको पुस्तक से संबद्ध कर पाता है, तो लेखक सफल हुआ। एक भी पाठक पुस्तक से आंदोलित अथवा प्रेरित हो तो लेखक/लेखिका सफल माने जाने चाहिए।

**03.**
**प्रश्न :—** पुस्तक की भूमिका जब कोई लिखता है तो उसे लेखक के प्रति अपने निष्ठा निभानी चाहिए या पाठक के प्रति?
**उत्तर :—** पाठक के प्रति। उसे लेखन के गुण-दोष पर ही बात करनी चाहिए। मैंने अभी पुस्तक-मेला में देखा है। एक कॉलेज की लड़की ने भूमिका को ध्यान से पढ़ा और पुस्तक ख़रीद ली। ऐसे में भूमिका-लेखक यदि पुस्तक-लेखक से मित्रता-धर्म निभा रहा हो, तो पाठक का ठगा जाना तय है।

**04.**
**प्रश्न :—** दादा-दादी के मुँह से कथा सुनकर वह कथा जल्दी याद हो जाती रही है या पुस्तक में पढ़ने पर कथा याद होती है?
**उत्तर :—** दादा-दादी के मुँह से सुनी कथा तो निरक्षर को भी याद रह जाती है। पुस्तक में पढ़ने पर वही रचना स्मरण रहती है, जो हमें पसंद आ जाए।

**05.**
**प्रश्न :—** रचना संसार में आपको हकीकत बयां करना पसंद आता है या कल्पना के पंख लगाकर हकीकत का सच सामने लाना?
**उत्तर : —** कल्पना के माध्यम से यथार्थ-चित्रण करना। सीधे यथार्थ-चित्रण तो अख़बार की ख़बर हो जाएगा।

**06.**
**प्रश्न :—** लेखन में आपको सुकून कब मिलता है अपनी बात पाठक तक पहुँचाने में या अपनी लिखी बात पर जन समर्थन प्राप्त करने पर?
**उत्तर :—** लघुकथा-लेखक के रूप में संप्रेषण ही प्रधान है। एक पाठक तक भी कथ्य और उद्देश्य संप्रेषित हो, तो मुझे संतुष्टि मिलती है। जन-समर्थन मेरे लेखन का उद्देश्य कभी नहीं रहा।

**07.**
**प्रश्न :—** पाठक द्वारा/श्रोता द्वारा या समीक्षक के द्वारा जब आपकी रचना की खरी-खरी समीक्षा की जाती है तो उस समय आप कैसा महसूस करते हैं?
**उत्तर :—** बहुत ही अधिक उत्साहित। जितना माँजा जाएगा, बर्तन उतना ही चमकेगा। मिथ्या प्रशंसा के एक ग्रंथ से खरी-खरी समीक्षा का एक कड़वा शब्द ही शिरोधार्य। मेरे लेखन
की यात्रा में इस खरी-खरी और कटु आलोचना का बहुत बड़ा योगदान रहा है।

**08.**
**प्रश्न :—** साहित्यिक लेखन करने वाले को अगर साहित्यिक मंच का कार्य सौंपा जाए तो आपका मानना क्या है कि वह मंच के प्रति ज्यादा जागरूक होगा या अपने लेखन के प्रति?
**उत्तर :—** सदैव ही लेखन के प्रति। लेखन ने उसे मंच दिया है। मंच ने उसे लेखन नहीं दिया। साहित्यकार यदि लेखन के प्रति जागरूक न रहे, तो मंच से उसका नियंत्रण छूटना निश्चित है।

**09.**
**प्रश्न :—** रचनाकार अपने लेखन के जरिए क्या समाज को बौद्धिकता प्रदान करता है समाज में कोई प्रथा खत्म हो इसके लिए क्या वास्तविक कार्य कर पाता है?
**उत्तर :—** एक लघुकथा-लेखक के रूप में विसंगतियों पर प्रहार करना मेरा प्रथम उद्देश्य रहता है। कोई कुप्रथा मेरे लेखन से समाप्त हो, यह तो गाल बजाना माना जाएगा। हाँ, दिशा दिखाना मेरा ध्येय अवश्य रहता है।

**10.**
**प्रश्न :—** बोधगम्य रचनाएँ कौन सी होती हैं,जो सरल भाषा में लिखी जाती है या जो क्लिष्ट शब्दों के साथ लिखी जाती है?
**उत्तर :—** यथासंभव शब्दावली सरल ही होनी चाहिए। बोधगम्य रचना वही है, जिसे आम पाठक भी समझ सके और उसे शब्दकोश का प्रयोग न करना पड़े।

**11.**
**प्रश्न :—** समाज में विखंडित चिंतन हमेशा देखने को मिलता है इसका प्रमुख कारण क्या है?
**उत्तर :—** चिंतन विखंडित होना एक जागरूक समाज के लिए आवश्यक भी है। भेड़-चाल मानव को शोभा नहीं देती। दरअसल चिंतन अनेक बिंदुओं पर निर्भर करता है, जैसे स्थापित मान्यताएँ, धार्मिक अवधारणाएँ, साहित्य का प्रकार जो व्यक्ति पढ़ता है, उसका दैनिक कार्य, पारिवारिक परिवेश, सोचने की पद्धति और उसका व्यक्तित्व। ज़ाहिर है, समाज में ये सभी वृत्तियाँ व्यक्ति-दर-व्यक्ति पृथक होती हैं। विखंडित चिंतन का यही मुख्य कारण है। परिस्थितियों के अनुसार वरीयताएँ निर्धारित करने की प्रक्रिया सभी व्यक्तियों के अलग-अलग हो सकती हैं।

**12.**
**प्रश्न :—** एक समीक्षक के द्वारा जब जो कुछ लेखन के संबंध में कहा जाता है और दूसरे समीक्षक के द्वारा भी अगर वही कहा जाता है तो इस पर लेखक को विचार करना चाहिए या नहीं?
**उत्तर :—** सदैव। यह तो परम आवश्यक है। यदि दो पृथक समीक्षक किसी बात पर एक राय हों, तो लेखक का कर्त्तव्य बनता है कि वह इंगित बिंदुओं की ओर सुधारात्मक कार्यवाही करे।

**13.**
**प्रश्न :—** माँ शारदे की जब कृपा प्राप्त होती है इसका पता कैसे चलता है?
**उत्तर :—** जब आप लिखने बैठें और आपको अग्रिम लेखन ख़ुद-ब-ख़ुद सूझने लगे। जब आपको लेखन के लिए उपयुक्त शब्दों अथवा कथानक आदि निर्बन्ध सूझने लगें। जब लेखन के पश्चात आपको दर्प का एक कण भी स्पर्श न कर सके। जब आपको लगने लगे कि कोई अदृश्य शक्ति है जो निरंतर उद्देश्यपूर्ण लिखने के लिए आपको प्रेरित करती है।

**14.**
**प्रश्न :—** पति अगर विषधर होता है पीड़ा दायक होता है तो पत्नी क्या होती है?
**उत्तर :—** अक्सर धैर्य की प्रतिमूर्ति। परंतु ऐसा होना उचित नहीं। अन्याय सहना हमेशा ही निंदनीय है। पत्नी को विरोध या प्रतिकार करना चाहिए। विछोह भी हल है, परंतु भारतीय परिवेश में बहुधा संभव नहीं हो पाता।

**15.**
प्रश्न :— नारी संसार की अगर शोभा है वह अगर परिवार में प्यार, स्नेह, वात्सल्य का भाव रखती है. फिर भी ऐसा क्या हो जाता है? उस परिवार में खुशी नाम की चीज नहीं दिखती?
उत्तर :— आश्चर्यजनक रूप से ऐसा भी नारी के कारण ही होता है। बहुधा घर में दो या अधिक स्त्रियां हों, तो अहं में टकराव होता है। जब यह टकराव सहनशीलता की सीमा तोड़े, तो अलगाव हो जाता है। पुरुष यदि धैर्य बनाये रखें और समझौते का प्रयास जारी रखें, तो हल निकल सकता है। मेरा व्यक्तिगत अनुभव बहुत कटु रहा है। कुछ रिश्ते अलग रहने पर ही मधुर रहते हैं। यह बहुत पीड़ादायक है, पर सत्य है।

**16.**
**प्रश्न :—** शिक्षित स्त्री घर परिवार का गौरव होती है वह अपने बच्चों को सुशासनकारी बनाती है तो उसे शिक्षित पुरुष क्या करता है?
**उत्तर :—** शिक्षित पुरुष अक्सर कामकाजी होता है। परिवार को अधिक समय स्त्री ही दे पाती है। बच्चे संस्कार माता से जल्दी सीखते हैं। लेकिन पुरुष के कुव्यसन बच्चे बहुत जल्दी ग्रहण कर लेते हैं। यह आवश्यक है कि बच्चे छोटे हों, तो पुरुष को उनके सामने आदर्श बनना चाहिए, भले ही उसे बनावटी व्यवहार ही क्यों न करना पड़े।

**17.**
**प्रश्न :—** होली के दिन दुश्मन के घर जाकर भी उसे प्रणाम करना उसकी खुशी के लिए दो शब्द बोल देना ईर्ष्या को भूलकर उसे गले लगा लेना और अगले दिन से फिर बुरे मनुष्य का भाव रखना उससे दुश्मनी रखना क्या कहलाता है?
**उत्तर :—** छद्म व्यवहार, छल तथा द्वेषपूर्ण व्यवहार।

**18.**
**प्रश्न :—** साहित्य से अतीत का ज्ञान होता है ।भविष्य का आलोक पथ प्रशस्त होता है, तो साहित्यकार को क्या कहा जाएगा?
**उत्तर :—** साहित्यकार मशालची मात्र है। वह आईना ले कर घूमने वाला वह पात्र है, जो अक्सर आईना देखने वालों के अपशब्दों का शिकार होता है। साहित्यकार युग दृष्टा बन जाए, तो बहुत बड़ी उपलब्धि होगी। युग प्रवर्तक बनना बेहद कठिन है। यही वह स्तर है जो सामान्य लेखकों को मूर्धन्य लेखकों से अलग करता है।

**आपकी अगली पुस्तक पाठकों तक शीघ्र पहुँचने की कामना और शुभकामना देती हुई आपका धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ मैं**
**विभा रानी श्रीवास्तव।**

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वाराणसी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
सोमवार, 11 मई 2026

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

## ग़ज़ल

आता है कौन लुटती बस्ती को बचाने के लिए
आते सभी हैं नाम बस अपना कमाने के लिए

आते हैं 'ओहदे-दार आलीशान गाड़ियों में ही
ख़ुद को मसीहा उजड़ी बस्ती का बताने के लिए

बस्ती में खोलनी दुकानें नफ़रतों की पड़ती हैं
इक दूसरे से फ़ाइदा अपना उठाने के लिए

सरकारें चलती थोड़ी हैं इन काग़ज़ी पुलिंदों से
लोगों की पड़ती है ज़रूरत घर जलाने के लिए

लिखता है ऐसी ग़ज़लें मेरा ये क़लम बुझा हुआ
हर दिल में आग अपने शे'रों से लगाने के लिए

– दिलीप मेवाड़ा

## महसूस

तेरी रात कट गई तो क्या बँटा है प्यार ,
क्या बात है और क्या कुछ तुझ तक उधार?

ठहर तो ज़रा और डरना तो मना है यार,
इंसानियत है जागा तो हर दिन ही है यादगार।

तेरे अंदर भी आग और बाहर भी है इंतज़ार,
धुआँ की वजह में साथ देने का है इज़हार।

जलवा देखा तेरा और वायदा तो रख तू बरकरार,
जब न विजय तो रहेगा कोई अन्य भी सुकुमार।

कोई तो फैसला और कोई देगा क़ल भी साक्षात्कार ,
मत कह कि संसार के वजूद से नहीं बाज़ार ।

तेरे सामने घर मेरा तो क्यों हुआ है तकरार,
तमाशबीनों का क्या और हुआ क्या था आख़िरी बार?

मेरी तन्हाई पर तेरी अदाकारी में क्या-क्या महसूस बारम्बार,
क्या दुहाई और पल-पल ग़म किसे न है स्वीकार?

मुँह न चुराया और सहा कातिल निगाहों के वार,
पर्दा नहीं और ठोकर सितमगर से तो क्या हार?

विजय शंकर प्रसाद

## कविता

वो बातें
जिन्हें हम करते थे
प्यार की आहें भरते थे,

मुझसे नाराज़ हैं
बहुत उदास हैं
घूमती आस पास हैं,

आपस में
बातें करती हैं
मुझ पर ताने कसती हैं

हम तो यूं ही बदनाम हैं
तुम दोनों का राज बेनाम है ,

हमारा भी एक वजूद है
तुम ही जानो क्या सच क्या झूठ है,

बताओ क्यों बनाया हमें इतना
जब दोनों को साथ नहीं था रहना,

मीठी जुबां से हमें फिसलाया क्यों
हमारी ओट में दिल बहलाया क्यों,

दिल को हद में रखा करो
बेमतलब भावुकता में न बहा करो।

आरती शर्मा

## अपने अस्तित्व की तलाश में मैं"

आज का विषय पढ़कर मन किया कुछ लिखने का,
अपने विचारों को शब्दों में ढालना, सजा कर लिखने में थोड़ी कच्ची हूँ।

जीवन के किसी न किसी पड़ाव में हर व्यक्ति को यह विचार आता ही होगा,
मैं कौन हूँ?
अपने अस्तित्व का सवाल मुझे भी अक्सर घेर लेता है।

मैं और मेरी पहचान ज़िम्मेदारियों में कहीं दब जाती है।
ज़िंदगी के हर पड़ाव में अपना वजूद ढूँढने की कोशिश करती हूँ।

खुद अपने अस्तित्व की तलाश में मैं,
कभी आईने से पूछती हूँ,
कभी खामोशी में ख़ुद से पूछती हूँ।

नाम, रिश्ते, ज़िम्मेदारियों के पीछे
अपनी पहचान तो जैसे कहीं छूट जाती है।
हर सुबह एक नई भूमिका ओढ़ लेती हूँ—
बेटी, पत्नी, माँ, दोस्त, दुनिया की एक भीड़।

शाम होते-होते थककर सोचती हूँ,
इन सबके परे, असल में कौन हूँ मैं?

शायद अस्तित्व कोई मंज़िल नहीं,
रोज़ खुद को थोड़ा और जान लेने का सफ़र ही जीवन है।

ज़िम्मेदारियों के बीच से ही
चुपके से मुस्कुराकर निकल आती हूँ "मैं"।

यह तलाश खत्म नहीं होती।
शायद यही तलाश ही तो है,
जो हमें हमसे मिलाती है.....।

पूजा राठौड़

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वाराणसी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
मंगलवार, 12 मई 2026

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

# लिव-इन रिलेशनशिप

उस फ्लैट की दीवारों पर लगे आधुनिक चित्रों में रंग तो बहुत थे, पर चमक गायब थी। विवान और समायरा आमने-सामने बैठे थे, जैसे किसी युद्ध के मैदान में दो थके हुए सिपाही संधि का इंतज़ार कर रहे हों। कमरे का सन्नाटा इतना भारी था कि घड़ी की टिक-टिक भी हथौड़े की तरह सुनाई दे रही थी। "क्या अब सब खत्म हो गया?" समायरा ने धीमे से पूछा। उसकी आवाज में वह कंपन था, जो किसी पुरानी इमारत के गिरने से पहले महसूस होता है। विवान ने हाथ में पकड़े कॉफी मग को देखा, जिसमें झाग मर चुका था। "खत्म तो उसी दिन हो गया था, जिस दिन हमने समझौतों को प्रेम का नाम दिया था," उसने सपाट लहजे में जवाब दिया। उनके बीच का रिश्ता उस रेंट एग्रीमेंट की तरह था, जिसकी मियाद खत्म हो चुकी थी। वे साथ तो थे, पर वैसे ही जैसे किसी स्टेशन पर खड़ी दो अलग-अलग दिशाओं में जाने वाली गाड़ियाँ—दूरी शून्य, पर मंजिलें मीलों दूर।

विवान की बातों में वह चुभती हुई सच्चाई थी, जो हंसाती कम और अंदर तक छीलती ज्यादा थी। उसने कहा, "समाज को अंगूठा दिखाना आसान है समायरा, पर खुद की परछाईं से नजरें मिलाना मुश्किल।" समायरा उसे देखती रही। उसे याद आया कि कैसे वे 'आजादी' का झंडा लेकर इस घर में आए थे, यह सोचकर कि सात फेरों के बंधन पुराने जमाने की बेड़ियाँ हैं। पर आज वही आजादी उसे किसी कालकोठरी की तरह लग रही थी। लिव इन रिलेशनशिप उनकी जिंदगी का पूरा सच बयान कर रही थी। "क्या तुम मेरे साथ चलोगे?" "कहाँ? जहाँ से हम भागकर आए थे?" "नहीं, जहाँ सचमुच का घर होता है।" "घर ईंटों से नहीं, विश्वास की पवित्र अग्नि से बनता है, जो हमने कभी जलाई ही नहीं।" उनका दर्शन अब उस सूखी हुई नदी की तरह था, जिसके तल पर केवल कंकड़-पत्थर और टूटे हुए वादे बचे थे।

विवान ने कमरे के कोने में रखे एक बड़े से सूटकेस की ओर इशारा किया। "इसमें क्या है?" समायरा की धड़कनें तेज हो गईं। विवान ने उसे धीरे से खोला। उसमें शादी का एक पुराना जोड़ा, कुमकुम की डिब्बी और मंगलसूत्र रखा था। "यह सब क्या है विवान? तुम तो कहते थे कि ये सब ढकोसले हैं?" समायरा की आँखों से आँसू बह निकले। विवान की आँखों में एक अजीब सी वीरानगी थी। "ये मेरी माँ के हैं। मैंने सोचा था कि शायद किसी दिन हम इस 'लिव-इन' की दहलीज लांघकर उस पवित्र दुनिया में कदम रखेंगे, जहाँ रिश्तों को पहचान मिलती है। पर हमने तो इस घर को केवल एक होटल बना दिया, जहाँ हम अपनी थकान मिटाते थे। सच तो यह है कि जब दो बदन पल भर की खुशी के लिए एक दूसरे की थकान मिटाने की मियाद बन जाएँ, तब वहाँ यादें कभी नहीं बनतीं।" रात गहराती गई। सांसें रुकने लगी थीं। वे दोनों उस सत्य के सामने खड़े थे, जो उन्होंने खुद ही बड़ी कुशलता से छिपा रखा था।

पूरा घर एक अजीब सी रोशनी से भरा हुआ था। अचानक दरवाजे पर दस्तक हुई। पुलिस और कुछ लोग अंदर दाखिल हुए। समायरा चिल्लाई, "यह सब क्या है?" पर किसी ने उसकी आवाज नहीं सुनी। पुलिस अधिकारी ने विवान की ओर इशारा किया, जो सोफे पर बेजान पड़ा था। पास ही समायरा की भी देह पड़ी थी। वे दोनों महीनों पहले ही एक सामूहिक अवसाद में जान दे चुके थे।

यह पूरी बातचीत, यह पूरा झगड़ा और यह पछतावा दरअसल उनकी भटकती हुई रूहों का संवाद था, जो उस घर की चारदीवारी में कैद हो गई थीं। जिस 'लिव-इन' को वे जीवन की नई शुरुआत मान रहे थे, वह वास्तव में उनकी मृत्यु का कारण बन चुका था। सच तो यह है कि जो अब तक जिंदा लग रहे थे, वे केवल यादों का एक डिजिटल अवशेष थे। उनकी स्वतंत्रता ने उन्हें ऐसी जगह पहुँचा दिया था, जहाँ से वापसी का कोई रास्ता नहीं था।

**डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा**
**'उरतृप्त'**

# ग़ज़ल

**2122 2122 2122 212**

सीखना सबको बहुत कुछ है यहाँ संसार से।
जीतने का जश्न कीजे सीखिए कुछ हार से।।

चल रहा व्यापार दुनिया का; ख़ुदा का है करम,
व्यर्थ उम्मीदें न रखिए आप कुछ सरकार से।।

जिंदगी की हर मुसीबत कुछ सिखाकर जाएगी,
सीखना अब आपको है; दीप से अधियार से।।

जब पता है चार दिन की है हमारी ज़िंदगी,
क्यों न फिर हम-आप यह जीवन बिता लें प्यार से।

वे मुकद्दर का सिकंदर मानते मुझको रहे,
और मैं ज़ख्मी पड़ा था ठोकरों की मार से।

प्रेम से बातें न बनती हो जहाँ छल और कपट,
फिर कलम की धार का अभिषेक हो अंगार से।

**"स्वरचित, मौलिक रचना"**
**चिराग़ जैन 'चैतन्य'**
**भरूच (गुजरात)**

# तेरी उम्मीद

तेरी उम्मीद का दिल में ख़िराम हो जाना
मेरे फ़रार के रस्तों का ख़ाम हो जाना

नज़र उठाना तेरा ख़ेमा-ए-अदू से और
मेरा ही क्या मेरी सफ़ का ग़ुलाम हो जाना

कोई ख़याल उतरना हवा-ए-सुब्ह के साथ
फिर उसको सोचते रहने में शाम हो जाना

मिसाल-ए-अक्स है तू बाम-बाम - घर में रहूँ
सफ़र करूँ तो तेरा गाम-गाम हो जाना

ये मारका भी कोई कम नहीं अभी के लिए
तेरे असीरों में अपना भी नाम हो जाना

तुम्हारा घर से निकल आना ज़ुल्फ़ खोले हुए
और आधे शहर की सड़कों पे जाम हो जाना

कभी जो घेर ले बीमारी-ए-जुनूँ तुमको
सही इलाज है ग़रक़ाब-ए-जाम हो जाना

किसी के ख़त सर-ए-बाज़ार खोलने की तरह
गुनाह है मेरे शेरों का आम हो जाना

कभी जो दिल की सुनाने का जी करे 'आशू'
तुम अपने आईने से हम-कलाम हो जाना

**आशु मिश्रा**

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वारासिवनी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
बुधवार, 13 मई 2026



# इमरजेंसी गेट क्यों?
## (हास्य कविता)

एक आदमी था रामू,
उसका दोस्त था श्यामू,
वह दोनों एक दिन बस से जा रहे थे,
सीट नहीं मिली तो खड़े होकर जा रहे थे,
जेब में पैसे थे कम,
पर हौसले में था दम,
राज्य परिवहन की थी गाड़ी,
दोनों भाई न थे अनाड़ी,
कंडक्टर की आवाज आई जब,
दोनों के कान खड़े हुए तब,
किस्मत थी उनकी अच्छी,
जीवन भर की उपासना थी सच्ची,
पीछे दिख गया इमरजेंसी दरवाजा,
रामू ने श्यामू को इशारा किया कि तू भी आजा,
जब गाड़ी रुकी एक स्टैंड पर,
वह दोनों कूदे और गिरे हैंड पर,
रामू ने बोला हाय!
श्यामू ने बोला हाय!
आवाज सुनकर कंडक्टर आया,
वहां उन दोनों चोरों को पाया,
फिर दोनों गए जेल में,
छूट भी न पाए बेल पे।

~ **प्रणव राज, बिहार**

# 'हमरी सोन चिरैया'

बिटिया तुम अब हुईं पराई
छोड़ा मायके का घरबार
जाओ रहना हंसी-खुशी से
अब तुम्हें मिला नया संसार
पाल-पोस कर बड़ा किया
पढ़ी-लिखीं घर की थीं शान
हमरे आंगन की सोन चिरैया
रखियो ससुराल में हमरा मान
उस घर में अब रहना होगा
जो भी हो तुम्हें सहना होगा
तुम्हें सौंप रहे हैं किसी और को
मिलजुलकर ही रहना होगा
हमरी लाडो आँखों की ज्योति
तुम इस घर में थीं एक सौगात
जाते जाते ले जाओ दुआएं
तुम फलो-फूलो दिन और रात।

**-शन्नो अग्रवाल**

# जीवन का सत्य

हजार कांटे हो राहों में,
फिर भी चलना तो पड़ेगा।
हजार उलझने हो जीवन में,
फिर भी जीवन जीना तो पड़ेगा।

जो खुल चुकी है रिश्तो की सिलाई,
उसे प्रेम रूपी धागे से सिलना तो पड़ेगा।
कभी अपने लिए,
कभी अपनों के लिए,
गमों को सहना तो पड़ेगा।

खुशी के हो या दुख के,
इन आंसुओं को पीना तो पड़ेगा।
सपने देखना कोई गुनाह नहीं,
मगर इन सपनों के लिए दहलीज पार करना तो पड़ेगा।

मंजिल मिले ना मिले,
फिर भी मुसाफिर बनना तो पड़ेगा।
बहुत थक गए यह कह कर बैठ जाओ,
मगर हौसले जगा कर रास्ते तय करना तो पड़ेगा।

रुक ना जाए यह हृदय गति,
इसीलिए किसी से दर्द बांटना तो पड़ेगा।
जहां सुकून मिले दिल को,
चलो वही चलते हैं,
मगर कभी-कभी इन अनसुलझे प्रश्नों के शोर को भी सहना तो पड़ेगा।

माना कि बहुत अंधेरा है अभी,
पर जैसे भी हो सवेरा लाना तो पड़ेगा।
कम ना पड़ जाए रोशनी जीवन में,
इसके लिए अपने हिस्से का दीपक जलाना तो पड़ेगा।

**रीति झा**
**जमशेदपुर, झारखंड**

# हां, मैं मजदूर

हां मैं मजदूर, गमों से चूर
पर ना हूं... मैं मजबूर!

पसीना बहाते, महल बनाते,
पर घर खुद के ना बन पाते।

धूप की चादर ओढ़े तन,
छांव का सपना बुनते मन।

ईंटों में अपनी सांसें भरते,
पत्थरों से रिश्ते करते।

हाथों की रेखाओं में दर्द,
फिर भी होठों पर है हर्ष।

दिनभर श्रम की अग्नि में जलते,
रात को थककर चुप ही ढलते।

रोटी की खातिर जीवन सारा,
हर मौसम लगता है किनारा।

उनके पसीने की हर बूंद,
धरती को करती है अनुपम धुंध।

परिश्रम जिनका गहना है,
संघर्ष ही उनका रहना है।

सपनों को आंखों में सहेजते,
अपनों के लिए सब कुछ सहते।

मजदूर हैं वो, जग के आधार,
उनसे ही चलता "ऐ दविंदर "
सारा संसार।

**डॉ.दविंदर कौर होरा**
**साहित्यकार**
**इंदौर म.प्र**

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वारासिवनी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
गुरुवार, 14 मई 2026

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

# "मेरा पहिया मेरा भैया"

मेरा पहिया , मेरा भैया
कभी न रुकने वाला ।
उन्नति के पथ पर संग मेरे
बढ़ता है मतवाला।।

पहिए के संग जुड़ी प्रगति की
अद्भुत एक कहानी।
जो पहिए के साथ चला
मंजिल उसको मिल जानी।।
साहस भाव , सजगता पहिया
बच्चों में उपजाता।
गतिमय रहने से मुश्किल में
होती है आसानी ।।

चिंता हर कर पहिया खोले
चिर खुशियों का ताला ।
पहिया बाल- मनोरंजन का
एकमात्र रखवाला ।।

पहिया हो गतिवान ,
दूसरों को भी गति देता है।
तन को मन को और वतन को
अनुपम रति देता है।।
आज और कल की उन्नति का
सुखद स्वप्न है पहिया।
कल-युग से , उन्नति-युग
आने की अनुमति देता है।।

अभिलाषा के नवरंगों से
हर बचपन रंग डाला ।
जिसने पहिए को ,
मन की आँखों से देखा - भाला।।

**@गीतकार**
**जानकीप्रसाद**
**विवश**

# कविता

कविता में अपनापन न रहा
छंदों का रुनझुनपन न रहा

कविता स्वच्छंद हो गई है
उसकी कोमलता खो गयी है

कविता पथभ्रष्ट हुयी जब से
उपभोग वस्तु बन गई तब से

यह गद्य का रूप सजा बैठी
पुरुषों की पंक्ति में जा बैठी

पुरुषत्व नहीं पूरा पायी
स्त्रीत्व न वापस ला पायी

अब अर्धनग्न हो बैठी है
आकर्षण खो कर बैठी है

जब ग़ज़ल एक आधार बना
सुर लहरी का सिंगार बना

सुर कविता के, हो गए चोरी
कविता बंदी सी, हुयी कोरी

अस्तित्वहीन, दुःखी होती है
इसलिए ये कविता रोती है।

**प्राणेन्द्र नाथ मिश्र**

# थमने को कहती है

चलते-चलते कहीं से
एक राह निकल आती है
और उस अंजाने राह पर
एक ठौर मिलती है
थका हुआ सा मन
थमने को कहती है
पर वही राह हमें यदा-कदा
कुछ याद दिलाती है
पीछे देखने को फिर से
एक पूर्ण और अपूर्ण के
बीच की आजमाईश
थमने को कहती है
दूर कहीं बादलों का शिखर है
जमी हुई नदियाँ बेखबर है
ऊँचाई पाने को नम होना होता है
वाष्पित होती जल की बूँदे
फिर संगृहीत होकर
थमने को कहती है
रास्ते कहीं नही जाते हमारे साथ
कदमों की सीमाएं तय करती है
जाना कहाँ है ,और क्यूँ है
जैसे एक उम्मीद भरी सुबह
रात की चादर हटा
झंझावात के बीच भी
थमने को कहती है

**सपना चन्द्रा**
**कहलगांव,**
**भागलपुर (बिहार)**

# पगडंडी

जहाँ कोई रस्ता उगता नहीं
वहाँ उग आती है
लचीली-लजीली
टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडी
गुजरते जिससे मन भर बोझा
अँजुरी भर बेर
भरपेट मकई
मिठास गन्ने की
बच्चों के बस्ते
यूनिफॉर्म, जूते
गाँव की गोरी की अथक मेहनत
साथी संग खिल-खिल हँसी

पगडंडी अपने साथ लाती है
गाँव को शहर में
औ
शहर को गाँव में
थोड़े चौड़े रस्ते की
धूल संग,
या
कोलतार की काली चमक,
उस चौड़ी चिकनी सड़क के
घमंड को तोड़ती हुई।

**अनिता रश्मि**
**राँची, भारत**

# स्वार्थ भरी दुनिया

स्वार्थ भरी दुनिया में, दिलजोई बाँधता नहीं कोई।
झूठ-फ़रेब के वातावरण में, सत्य के फूल खिलाता नहीं कोई।
तपती दोपहरी में, छाँव का छाता लगता नहीं कोई।
आड़ी-टेढ़ी पगडंडियों में, साथ निभाता नहीं कोई।
स्वार्थ भरी दुनिया में, दिलजोई बाँधता नहीं कोई।

आँसुओं से भीगी आँखों को, खुशियों से सींचता नहीं कोई।
तेरी-मेरी प्रतिस्पर्धा में, निःस्वार्थ भाव जगाता नहीं कोई।
उजड़े हुए आँगन में, आशा के दीप जलाता नहीं कोई।
सुप्त पड़े रिश्तों को, इंद्रधनुष के रंगों से सजाता नहीं कोई।
स्वार्थ भरी दुनिया में, दिलजोई बाँधता नहीं कोई।

इस अतृप्त दुनिया में, प्यासे को पानी पिलाता नहीं कोई।
लाख वादें करते हैं सभी, वक़्त पर वादा निभाता नहीं कोई।
असत्य का मार्ग ठुकराने, आगे कदम बढ़ाता नहीं कोई।
सूने जीवन में, प्रेम की कलियाँ खिलाता नहीं कोई।

काँटो भरी राहों में, श्रद्धा के फूल बिछाता नहीं कोई।
स्वार्थ भरी दुनिया में, दिलजोई बाँधता नहीं कोई।

**डॉ. राधा दुबे, जबलपुर,**
**मध्य प्रदेश**

# आज एक गीत–

तेरे होंठों की मुस्कन पर,नाम लिखा जिस जोगन का,
धड़कन-धड़कन उसको मैंने, तुझमें खोते देखा है..
तन्हाई की चादर ओढ़े, सन्नाटों के आंगन में,
बिरहा के आंचल में सूनी,रात सँजोते देखा है.....

जाने किसने योग मिलाया, ग्रह देखे गुण दोष गुने,
कौन घड़ी की सायत देखी, कैसे भाग्य प्रलेख चुने।
मन से मन का मेल नहीं बस, तन परिचय का साथ रहा,
अभिनय के सुंदर चेहरे को, अभिनय ढोते देखा है....

चाहे वादों के भ्रम टूटे,या सपनों की प्राचीरें,
फिर भी अपने ही रांझा की, होती हैं सारी हीरें।
बात सुनी थी जाना अब है, क्या होता है पावन प्रेम,
जब हँसकर दिल में ही दिल को, दर्द समोते देखा है....

बैठ चुकी हैं सारी नावें,सुधियों के गहरे तल में,
कोई कंकर फेंक रहा क्यों, अब मन सागर के जल में।
कैसे जोगन गीत सुनाए,मीत मिलन के मधुबन में,
देवों का मन हर यौवन ने, पत्थर होते देखा है....

**दीपशिखा सागर**

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

## सबल हुए हम

जितने पत्थर मिले राह में
उतने तरल हुए हम

बहुत सोच कर
बहुत समझकर
साँसों का
व्याकरण तय किया

वर्ण तलाशे,
शब्द तराशे,
कथनों का
आचरण तय किया

कठिन समय की
भाषाओं के
कठिन से कठिन
अर्थ सकेरे

संकेतों में
अर्थों का
नापा-जोखा
आहरण तय किया

और अंततः
जितना मिला दुरुह कथानक
उतने सरल हुए हम

गढ़े हुए या
मढ़े हुए
पात्रों को
स्वीकारा न कभी भी

मोह, प्रलोभन, भय
पर ख़ुद को
किसी तौर
वारा न कभी भी

'मंच या कि
नेपथ्य ?'हमेशा
अंतिम चयन
हमारा ही था

आगे बढ़ प्रायोजित
संवादों को
सत्कारा
न कभी भी

काट- छाँट में
जितनी ज़्यादा घटी भूमिका
उतने सबल हुए हम

**सीमा अग्रवाल**

## हिन्दुस्तानी ढूँढ रहा हूँ

सरल शब्द जो गूढ़ हो गये,
उनके मानी ढूँढ रहा हूँ।
हिन्दुस्ताँ में शेष बचे जो,
हिन्दुस्तानी ढूँढ रहा हूँ।।

हम युग-युग से ऋषि मुनियों की
परंपरा के संवाहक थे ।
हम थे सदियों आर्य पुत्र ही
राम कृष्ण कुल परिचायक थे।
धरा-धर्म की खातिर हमने
प्राणों की आहुतियाँ दी हैं।
दानव कुल से संघर्षों हित
जिन्दा जले अस्थियाँ दी हैं।
पुरखों के खूँ में जो कल थी,
वही रवानी ढूँढ रहा हूँ।।

पता नहीं कब फँसा गए खल
हमें जातियों के दलदल में।
बाँट दिया कुछ को भाषा में
कुछ को बाँट गए अंचल में।
हमें पुरातन पावन संस्कृति
के गौरव से विलग कर दिया।
शौर्य भरा इतिहास हमारा
शिक्षण से भी अलग कर दिया।
मैं अखंड भारत के सच की,
कथा पुरानी ढूँढ रहा हूँ।।

खंड- खंड हो रही विभाजित
आज सभ्यता युगों पुरानी।
षडयंत्रों के चक्रव्यूह में
पार्थ पुत्र सी फँसी जवानी।
अब न धनंजय कोई रण में
नहीं सारथी कोई माधव।
गांडीव भी पड़े निरर्थक,
बचा न हाथों में वह लाघव।
राष्ट्रधर्म हित समर लड़े जो,
उनका सानी ढूँढ रहा हूँ ।।

**देवेन्द्र सिंह**

## गजल

वैसै हरदम मनाना मझको आता तो नहीं,
नैनों की भाषा को पढ़ा भी जाता तो नहीं।

फिर भी रहती है कोशिश समझने की तुमको,
मगर तरीका मेरा ये तुम्हें ही भाता तो नहीं।

करुँ क्या मैं कैसे समझ में ना आए ,
दिल से रुखसत किया भी तो जाता नहीं।

फिर भी क्यूँ शिकायत तुम्हें मुझसे इतनी,
कुछ भी कहना मेरा तुम्हें लुभाता तो नहीं।

प्यार की हो गई है इंतिहा अब तो शायद,
बिन तुम्हारे मैंअब रह भी पाता तो नहीं।

**किरण मोर**
**कटनी(म.प्र.**

## हमारा अलाव

कुछ साल पहले तुम सर्दी में
यहीं थे याद है न। कितनी ठंडी हवा
और धुंध रही थी उस वर्ष।
हम अलाव जलाकर उसके पास
बैठ जाते और गुनगुनाते थे युहीं
क्योंकि --
गाना तुम्हें नहीं आता था और ना ही मुझे।
आज फिर उसी ठंड का झुरझुरा देने वाला
सा माहोल है पर तुम नहीं हो।
मुझे याद आ रहा है अलाव की लकड़ियों को
अरे -परे करते हुए थोड़ा मुस्कुराते हुए
तुम्हारा मेरी तरफ देखना। जेसे तुम पुछना
चाहते हो कि यह अलाव हमारे लिए क्या
मायने रखता है। ठंड को हमसे दूर रखने का
या हम दोनों को थोड़ा समय साथ बिताने का।
मैं भी मन ही मन खुश होती और सोचती कि
हर सर्दी में ऐसे ही अलाव जलाकर एक दुसरे
के साथ धन्टो बैठे रहे।
किन्तु नियति शायद कुछ और चाहती थी।
खैर ---
आज मैं अकेली हुं पर तुम्हारी उपस्थिति को
और इस उजले अलाव को प्रत्यक्ष रुप से अपने
साथ महसूस कर पा रही हूं।

**रजनी दवे**

## उम्मीद

मदद की उम्मीद में
हाथ तो बहुत उठे,
पर वक़्त आने पर
किसी से हाथ बढ़ाया न गया।

चमकते रहे महफ़िल में
झूठे चेहरों के साथ,
पर आईने से अपना ही चेहरा
मिलाया न गया।

मिट्टी का था वजूद
मिट्टी में मिल गया,
पर एक किरदार का बोझ
किसी से भी, उठाया न गया।

यहाँ हर कोई यहाँ
मतलब की बात करता है,
बिन गरज के किसी से
रिश्ता निभाया न गया।

बड़ी ऊँची हसरतें थीं
कि साथ चलेंगे सब,
पर भीड़ में भी अपना
साया पाया न गया।

नसीहतें देते रहे जो
उमर भर दूसरों को,
खुद के किरदार का दाग तक
उनसे मिटाया न गया।

सबने ढूँढा सुकून
दूसरों की बर्बादी में,
खैरियत का पैगाम
किसी के घर पहुँचाया न गया।

चाहा तो बहुत की
आंखें भींग जाएं
पर दर्द अपना
किसी से बताया न गया।

हर आदमी खुद में ही है
गुबार दर्द का
हमसे किसी को और
सताया न गया।

कोई दे रहा मुखाग्नि
गैरों की लाश को
किसी से अपने ही बाप को
कंधा लगाया न गया

किसी ने निभाई
अंतिम सांस तक
किसी से हाथ की मेंहदी
छुटने तक, भी निभाया न गया।

**कंचन तिवारी कशिश**
**#जौनपुर #बनारस**
**#उत्तरप्रदेश**

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वारासिवनी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
रविवार, 17 मई 2026



# कल_रात_तन्हा_था_चाँद

ड्यूटी रजिस्टर में कॉल ड्यूटी में डॉ. आहाना ने अपना नाम देखा तो क्रोध की चिंगारी ने बेबसी को मोम सा पिघला दिया और एक गर्म बूँद उसके गाल को जलाने लगी।
उसे ड्यूटी से परहेज़ नहीं था लेकिन आईसीयू की लाँग ड्यूटी के बाद कुछ घंटे सुकून के चाहना कोई अपराध नहीं था।
मैट्रन मिसेज अल्वा ने उसके कंधे पर हाथ रखकर सांत्वना दी। टिश्यू से आँख की नमी सुखाते हुए बोली, डॉक्टर, मेरा भगवान जानता है इस ड्यूटी के लिए मैंने शिफ्ट इंचार्ज सर से कितनी रिक्वेस्ट की थी कि आपकी ड्यूटी नहीं लगाएँ।
आपकी सख्त लम्बी शिफ्ट का वास्ता दिया लेकिन...
मुझे आपसे कोई शिकायत नहीं है मिसेज़ अल्वा। अपने-आप को दोषी मत मानिए। अपनी इस सजा के लिए मैं खुद जिम्मेदार हूँ।
आहाना की बात से चौंक गई मैट्रन। ऐसा क्यों बोलती हो आप?
कल एक पेशेंट को चेस्ट ट्यूब डालने की इमर्जेंसी में उनींदे डॉक्टर को कॉफ़ी नहीं सर्व कर सकी। जूनियर होते हुए सीनियर की बात नहीं मानकर मैंने प्रोटोकॉल तोड़ा है। सजा मिलना लाजिमी है।
ऐसा कब हुआ डॉक्टर?
रात 3 बजे। बेड नम्बर 6 को साँस लेने में परेशानी हो रही थी। उसकी बेचैनी देख मैंने उसके लंग्स में जमा पानी को ड्रेन करने के लिए ट्यूब डालना जरूरी समझा। तभी मुझे कॉफ़ी बनाने का हुक्म मिला। मैंने किसी को आ रही नींद के इलाज से एक मरीज को कुछ देर चैन की नींद की कोशिश को ज्यादा जरूरी समझा और...

ओह्ह नो। आपने अपनी ड्यूटी को जरूरी समझा। डॉक्टर संभव को समझना चाहिए था... वो अपने से कॉफ़ी बना सकते थे। पेशेंट के लंग्स ड्रेन करने के बाद हाथ सेनेटाइज कर जब मैं कॉफ़ी बनाने गई, डॉ. संभव कॉफ़ी पी चुके थे। मुझ पर जलती निगाह डालकर वो आईसीयू-2 में चले गये।
मुझे डाँट देते तो इतनी तकलीफ़ नहीं होती लेकिन उनका इस तरह नजरअन्दाज करना बहुत चुभा...
बेड नम्बर 6 के पेशेंट को देखा, वो आराम से सो रहा था।
डॉक्टर संभव के उस अपमान की पीड़ा कम करने के लिए मैं वार्ड की बालकनी में आ गई।
वातानुकूलित वार्ड की घुटन से ताजी हवा में आकर अच्छा लगा। काँच के पार्टीशन से वार्ड के मॉनीटर देख लेती थी लेकिन आसमान में चाँद देखकर लगा, मेरी तरह रातभर अपनी ड्यूटी कर थककर बैठ गया है। पता नहीं क्यों मैं जब भी आसमान में तन्हा चाँद को देखती हूँ मुझे आसमान, आईसीयू नज़र आने लगता है । तारे मरीज और चाँद ड्यूटी स्टॉफ की तरह लगता है। टूटता तारा किसी मरीज के मॉनीटर में बनी सपाट रेखा सा धरती पर गिरता लगता है। मरीज जब टूटता है तो धरती से आसमान जाता है शायद...
चाँद तन्हा होता है लेकिन उसमें अनगिनत चेहरे दिखाई देते हैं। जिस मुस्तैदी से चाँद अपनी ड्यूटी करता है हर रात वो मुझे डॉक्टर संभव जैसा लगता है। कॉफ़ी पीकर नींद भगाता लेकिन हर मॉनीटर पर नज़र गड़ाये।
मिसेज़ अल्वा के चेहरे की झुर्रियाँ कुछ और गहरी हो गईं आहाना की बात सुनकर।
आहाना, कॉल ड्यूटी लगने पर होस्टल नहीं जाती। डॉक्टर्स ड्यूटी रूम में ही कमर सीधी कर लेती है। समय-असमय कॉल आना फिर भागकर वार्ड में आना पसंद नहीं है उसे।
कैंटीन से सेंडविच आर्डर कर खा लिया और मिसेज़ अल्वा को कुछ देर आराम करने का कहकर काउच पर लेट गई। थकावट और पिछली रात को जागते रहने के कारण शरीर कुछ देर आराम चाह रहा था। आँखें बंद थीं लेकिन नींद नहीं आ रही थी।
कदमों की आहट और मोंट ब्लेंक लेजेन्ड ब्लू परफ्यूम की भीनी-भीनी महक से पता चल गया था कि संभव आया है लेकिन उसने आँखें नहीं खोलीं ।
मिसेज़ अल्वा और उसकी बातें सुन रही थी वो। उसे सोता समझ संभव कह रहा था, मिसेज़ अल्वा, कभी-कभी जूनियर डॉक्टर्स का यह टाइट शेड्यूल देखकर दु:ख होता है। कितनी मेहनत करनी होती है इन्हें।
बेशक डॉक्टर। कल सारी रात जागी है आहाना। डे-ड्यूटी के बाद कॉल ड्यूटी... मुझे तो डर लगता है कहीं यह खुद बीमार न हो जाए...

मिसेज़ अल्वा, मेडिकल प्रोफेशन में रहकर आप ऐसा कह रही हैं। आपको तो मालूम है डॉक्टर सिर्फ़ बीमार की देखभाल के लिए होते हैं। उन्हें खुद बीमार होने की इजाज़त नहीं है... खासतौर पर आहाना जैसे डॉक्टर जो अनगिनत डूबती साँसों में अपनी साँसें डालते हैं ताकि मरीज़ की साँस चलती रहे।
एक बात कहूँ डॉक्टर, जब इतना समझते हैं तो क्यों तकलीफ़ देते हैं इसे? कल आपने जो किया उससे बहुत आहत हुई है।
मिसेज़ अल्वा, मैं अनजाने में भी उसे तकलीफ़ में नहीं देख सकता। आपको शायद पता नहीं है। बड़ी मिन्नत कर मैं उसकी ड्यूटी उस वॉर्ड में लगवाता हूँ जहाँ क्रिटिकल पेशेंट होते हैं और उसे कवर करने के लिए खुद उसके साथ रहता हूँ ।
देखा था मैंने उसे कल आईसीयू - 1 की बालकनी में अकेले खड़े लेकिन वहाँ से भी वो हर मॉनीटर पर नज़र रखे थी।
आईसीयू - 2 की खिड़की से मैंने पूरी रात उसे देखा है। वहाँ भी 2 पेशेंट की स्थिति बहुत ज्यादा खराब होने से मैं उसे कम्पनी नहीं दे सका लेकिन, चाँद से रिक्वेस्ट करता रहा वो सुबह होने तक आहाना के साथ रहे...

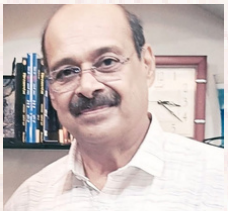

मिसेज़ अल्वा की सलवटें एक बार फिर गहरी हुईं। उनकी अनुभवी नज़र तीन लोगों को देख रही थी। डॉ. संभव को, डॉ. आहाना को और आसमान में चमकते चाँद को... बस अंदाजा नहीं लगा पा रही थीं, तीनों में ज्यादा तन्हा कौन है?
चाँद ने रातभर आहाना को, आहाना ने चाँद को और संभव ने आहाना को देखा... वाकई में रात भर तन्हा रहा चाँद...
आँखों में आँसुओं को रोकने की पुरज़ोर कोशिश करती आहाना सोच रही थी इस रात की सुबह न हो। टकटकी लगाए उसे देखता रहे चाँद...

**मुकेश दुबे**

# कविता

दौलत शराब इश्क़ के बढ़ते ख़ुमार को
ज़ाहिर न कीजिए कभी दिल के ग़ुबार को

आराम कीजिए ज़रा कुछ बेहतरी के बाद
हल्के में लीजिए नहीं उतरे बुखार को

मातम मनाइए या भले जश्न कीजिए
सर पर न रख के घूमिए पर जीत हार को

रखिए सभी से वास्ता पर दूर दूर से
दिल के करीब लाइए बस तीन~चार को

लाज़िम है दर्मियाँ भी ज़रा दूरियाँ रहें
ढीला न छोड़िए कभी दो दिल के तार को

मिल जाएगी विदेश में दौलत तो बे-शुमार
भूलोगे कैसे तुम भला कुर्ब ओ जवार को

मदहोश पी के इसलिए भी झूमता नहीं
शंकर समझ न ले कोई इस वादा ख़्वार को

**अजय श्रीवास्तव**
**'मदहोश'**

# गायब है

गिल्ली वो डंडा गायब है
बाबाजी वो पंडा गायब है

गैस चूल्हे का जमाना है
लकड़ी वो कंडा गायब है

अकल ठिकाने लगाते गुरुजी
रूल छड़ी वो डंडा गायब है

कोल्डड्रिंक पेप्सी का जमाना
कुल्फी बर्फ़ वो ठंडा गायब है

बड़े बुजुर्ग दुनिया दिखा देते
दौरे मोबाइल में,कंधा गायब है

कंचे वो गोली दस बीस पैसा
लुका छुपाई वो फंडा गायब है

**-किशोर**
**छिपेश्वर"सागर"**
**भटेरा चौकी बालाघाट**

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

## ग़रीब कौन !

उसने सूरज को
निकलते देखा है
उसने आसमान का रंग
बदलते देखा है

नर्म हवा को छूकर
भोर के चांद को विदा किया है
पंछी हवा पानी खुशबू को
जी भर के जिया है

वो बादलों को लपेट कर
बूँदों को झेलती है
वो बांध कर पल्लू से
मस्त हवा को खेलती है

वो स्वेद कणों का गहना पहनती है
धूप को ओढ़कर
दर्द खर्च कर देती है सब
कुछ नहीं रखती जोड़कर

बनाकर मुसीबतों का सिराहना
वो खो जाती है
सपने उसकी राह देखते हैं
और वो सो जाती है

वो खेतों में काम करने वाली
इसे अपना नसीब कहती है
आराम से भरी गम से डरी दुनिया
उसे गरीब कहती है.....

**.रश्मि स्थापक**

## कविता !

अब तुझे कहने का
मन ही नहीं करता
वादों और दावों के बीच
दवाब ही इतना है

कविता !
अब मेरे तुम आयासी नहीं
फूंकनी ,चिमटा ,चूल्हा हो
राख़, धुआँ भूख का मेकअप
लौट आया हूँ अच्छे दिनों में

कविता !
लोग मुझे हिन्दू समझते हैं
मुसलमानों का हमदर्द भी
तुम ही कहो , मैं किनारा
कैसे होकर जी पाऊँगा

कविता !
मशहूर होना जरूरी है क्या ?
लिखना जरूरी है क्या जीने से ?
कभी संडे मार्किट तुम भी आना
कबाड़ में कवि ढूँढेंगे मिलकर

कविता!
जब हम तुम थक जाएँगे
खुद से बातें करेंगे जीभर
पसीना पोंछ जलजीरा पिएंगे
उसे बेचनेवाले की तृप्ति के लिए



**शब्द मसीहा**

## अकेला होना,आसान नहीं

अकेला होना, आसान नहीं,
ये जीवन है, बहुत कठिन,
जीयो यदि तो, सबसे मिलकर जीयो,
भले रहो तुम, परेशान सही।

यादे किसी के भूलोगे नहीं,
छोड़ भी ना पाओगे,
घुट घुट कर, सदा रहोगे,
जीना इतना,सरल नहीं।

कष्ट जो भी हो, जैसे हो,
मिलकर ही रहो, सभी से,
कष्ट पाओ, दुख सहो,
लेकिन अलग मत, हो जाओ।

बहुत दर्द होता है, अकेले होने में,
आँसू बहाना होता है, छिपकर कोने मे,
बता नहीं सकते, बातें किसी को,
टूटता है ह्दय, दर्द ही दर्द में।

दैनिक क्रियाएं भूल जाते हैं,
अस्त-व्यस्त से जीवन होते हैं,
खामोशी मन में आ जाती है,
लोग सब अपने कट जाते हैं।

यदि खुद को अकेले में रखते हैं,
खुद को ही भूल जाते हैं,
इष्ट वंदना,भजन नहीं कर पाते हैं ,
मन की बैचेनी को फिर बढ़ाते हैं।

अत: कुल मिलाकर यही कहते हैं,
कि जैसे भी हो और जो भी हो,
खुद को समर्पित कर दो हालातों में,
जिसमें सब के सब भला चाहते हैं।

और क्या?? सब तो अपने हैं ही,
आज न तो कल समझेंगे ही,
मिला है कष्ट, दर्द यदि तो?
सुख, खुशी भी मिलेंगे तय है ही।

अकेलेपन में अब, मत जाओ,
सबकी खुशी में ही खुश रहो,
आसान नही ये अकेलापन,
बात ये समझो,और सभी को समझाओ ।

**चुनू साहा**
**पाकूड झारखण्ड**

## बादल नादान

यह बादल नादान लगें सपने से किसी को
इंद्रधनुष से सजे लगें अपने से किसी को

लेकिन किसी की आह का कारण हैं यह बादल
फसल के शमशान का कारण हैं यह बादल

उम्मीदों पर बरसे कुठारा घात के जैसे
पीट -पीट माथे को कोई रोये है ऐसे

खून पसीना सींचा था धरती में अपना
हंसती फसल लगे थी जैसे सुंदर सपना

हर पौधे संग एक-एक सपना रुठ गया है
धरती मां का बेटा फिर से टूट गया है।।

**ख़ुशी प्रयागराज**

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वारासिवनी (म.प्र.)

पं.क्र.(04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
मंगलवार, 19 मई 2026

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

## कब किसी और का भला देखा।

कब किसी और का भला देखा।
उसने अपना ही फ़ाएदा देखा।।

क्या बताएं तुम्हें कि क्या देखा।
राहे उल्फ़त में भी दग़ा देखा।।

सामने उसने सच खड़ा देखा।
जब कभी जिसने आईना देखा।।

सारी दुनिया को देख ली हम ने।
तेरे जैसा न बे वफ़ा देखा।।

मुफ़लिसी किस क़दर है दुनिया में।
हर कोई चेहरा बस बुझा देखा।।

आंख मेरी खुली रही या रब।
मरते दम तक के रास्ता देखा।।

मेरी सुनता वो क्या "सुमन" उसको।
अपने ग़म में ही मुब्तिला देखा।।

डॉ सुनीता 'सुमन'

## लघुकथा- जंजीर

"अरे बहन जी! अब तो ज़माना बदल गया है। हमारे-आपके वाला टाइम कहाँ रहा अब? लड़कियाँ खूब पढ़- लिख रही हैं, आगे बढ़ रही हैं, मर्ज़ी का खा-पहन रही हैं, काम रही हैं और क्या चाहिए?" दरवाजे पर खड़ी पूनम अपनी पड़ोसन मालती से बतिया रही थी

"यह तो ख़ूब कही आपने! हम तो अपने टाइम में ढंग से जी तक नहीं पाए। पहले माता-पिता की चौकसी फिर ससुराल वालों की मर्ज़ी।"मालती ने हाँ में हाँ मिलाई।

"अरे बहन जी! मेरा तो यही मानना है कि वक्त के साथ बदल जाओ। मैं तो भाई मॉडर्न ज़माने के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने में विश्वास रखती हूँ।" पूनम ने इतराकर कहा।

"मम्मी जी! मैं ऑफिस जा रही हूँ।" घर से बाहर निकलते हुए बहू मनीषा बोली।

"ठीक है पर शाम से पहले लौट आना।" पूनम ने कहा।

"पर मम्मी जी! आज बॉस की फेयरवेल पार्टी है तो मुझे देर----।" मनीषा ने धीमे स्वर में कहा।

"मनीषा! भले घर की बहू-बेटियाँ देर तक घर से बाहर नहीं रहतीं और यह पार्टी-वार्टी तो चोंचले हैं बस।" पूनम ने आँखें तरेरते हुए कहा।

"पर मम्मी जी! प्रमोद भी तो उसी पार्टी में देर तक---।" मनीषा ने प्रतिवाद करना चाहा।

"अरे! वह मर्द है।"कहकर पूनम फिर मालती से बतियाने लगी।

स्वरचित डॉ ऋतु अग्रवाल (मेरठ, उत्तर प्रदेश)

## लघुकथा - 'नासूर'

**शादी- ब्याह** का महीना चल रहा था। कैंटीन की हर मेज पर यही विषय छाया हुआ था। इसी माहौल में एक मेज पर वीरेन भी अपने सहकर्मी अशोक के साथ कॉफी की चुस्की का आनंद ले रहा था। उसके जेहन में पत्नी की कही गयी बात कौंध रही थी कि अब बेटी के हाथ पीले करने की बात सोचो।

वीरेन ने कॉफी का घूंट लेते हुए अशोक से पूछा," तुम्हारे बेटे कार्तिक की नौकरी तो लग गयी है। शादी के बारे में क्या विचार करते हो?"

"जब अच्छा घर और संस्कारी लड़की मिल जाएगी, करुँगा।"

" मेरी बिटिया राधिका के बारे में क्या सोचते हो ?"

"राधिका और कार्तिक दोनों बचपन के साथी रहे हैं, वे दोनों तैयार हों तो क्या दिक्कत है। ये बताओ शादी कैसी करोगे?"

" शादी अच्छी ही करूँगा , लेकिन राधिका दहेज के खिलाफ है और मैं भी।"

" कार्तिक को डाक्टर बनाने में, मैंने काफी खर्च किया है।"

"अरे! मेरी राधिका भी पढ़ी -लिखी है, अच्छा कमाती है।"

" देखो वीरेन! समाज और बिरादरी वालों को दिखाना भी जरुरी होता है। पिछले साल अपनी बिटिया सुरभि की शादी, मैंने बहुत धूमधाम से की थी।" इसके साथ ही अशोक ने लम्बी फेहरिस्त सुना दी।

"मैं कर दूँगा लेकिन मेरी भी एक शर्त है।"

" बोलो।"

"शादी के बाद पाँच साल तक राधिका की पूरी कमाई पर मेरा अधिकार होगा।" दोनों कुर्सियाँ खाली हो गयीं।

कमला अग्रवाल गाजियाबाद

## फुरसत के पल

कोरोना महामारी के चलते हर मानव परेशान।
फुरसत के पल में खाली बैठे क्या करें इंसान।

देश में बेरोजगारी फैल रही है पड़े पेट के लाले,
प्रवासी मजदूर पैदल चल रहे पैरों में पड़ गए छाले।

कोरोना महामारी के चलते बाहर निकलना दुस्वार,
संकट में है मानव जीवन आज चिंतित है संसार।

कारखाने सब बंद हुए अब कैसे मिलेगा रोजगार,
अर्थव्यवस्था कमजोर हुई कुछ न करेगी सरकार।

त्राहि-त्राहि मच रही देश में बिगड़ गए हालात।
रोजगार सब ठप्प हुए लोग झेल रहे है आघात।

घर के भीतर बंद किया आज हुआ मानव लाचार,
ऑनलाइन सब काम हो रहे, बंद पड़ा बाजार।

शून्य हुई मानव संवेदनाएँ, सड़कें हुई सूनसान,
फुरसत के पल में बैठें-बैठे थम सा गया इंसान।

सुमन अग्रवाल "सागरिका"
आगरा

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वाराणसी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
बुधवार, 20 मई 2026

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

# 'गॉसिप गंज'

**चिरंतन काल से चलता चला आया है 'गॉसिप गंज'।**
प्राचीन, अर्वाचीन सभी कालों में महिलाएं जब फ्री होती, एकत्र होतीं तो भांति -भांति के गॉसिप शेयर करके,
कभी विस्मय से नेत्र विस्फारित करके, कभी अफ़सोस जाहिर करके और कभी किसी मनोरंजक गप्प पर ठहाके लगा कर सभा बर्खास्त होती।
और ये गप्पें स्त्री समाज से निकल कर बड़ी आसानी से पुरुष समाज को अपनी लपेट में ले लेतीं ।
और कार्य से क्लांत तन -मन दोनों ही तरोताजा हो जाते हां ये बात अलग है इन गप्पों का दायरा मोहल्ला, घर, शहर तक ही सीमित रहता। पर समय कब ठहरा है? मुखपोथी यानी फेसबुक के आगमन के साथ ही लोगों की अतृप्त इच्छाओं का वटवृक्ष फूलने - फलने लगा और गॉसिप का ये दायरा दिनोदिन विशालकाय होता गया गांव, शहर, राज्य को तो छोड़ ही दीजिए वैश्विक स्तर पर भी गप्पों ने
जहां मानसिक शांति दी वहीं नुकसान भी कम नहीं किया।
मनोवैज्ञानिकों ने भी मानव की इन्हीं सब कमजोरियों का फ़ायदा उठाया और उसकी सोच को बड़ी आसानी से बदलने का भी बीड़ा उठा लिया।
अपने को चालाक समझता व्यक्ति हमेशा ही अपने पक्ष में तर्क देता रहा और बंटता रहा इस सब में क्षेत्रीय समाचार पत्रों, 24×7 न्यूज़ चैनलों ने भी अपनी भूमिका होशियारी से निभाई।और मोहल्ले, घरों की गॉसिप को धर्म की राजनीति तक पहुंचा कर 'बिल्लियां लड़ती ही रही, और बंदर रोटी लेकर भाग गया।
ये जो 'हिन्दू राष्ट्र' की अवधारणा है, और प्रत्युत्तर में मुस्लिम समाज की, ये आई कहां से? और हम कहां से इसके लपेटे में आते गए।
जरा अपना बचपन,किशोरावस्था, ,युवावस्था को याद करिए और ईमानदारी से कहिए कि इन सब गॉसिप ने क्या आप की सोच को नहीं बदला है,?
प्रेम, प्यार का स्थान शक, आशंका, और नफ़रत ने नहीं ले लिया है?
जो गप्पें विशुद्ध मनोरंजक हुआ करती थी, उन्होंने एक विषैला रूप धारण कर लिया है और बदल चुके हमलोग इसे मानते भी नहीं और तर्क कुतर्क, येन केन प्रकारेण इसको सत्य सिद्ध करने में लगे रहते हैं।
गोया कि इस लाइलाज बीमारी का अब कोई विकल्प नहीं है सिवाय सर्जरी के ------

**रश्मि सहाय ग्रेटर नोएडा**

## सिलसिला

जो उम्र भर के लिए तराश रहा था मुझे,
न जाने कहाँ खो-सा गया।

आज आँधी इतनी तेज़ थी कि घर का
छप्पर भी ढीला हो-सा गया।

समंदर की लहरें उछाल मार रही थीं ऐसे,
मानो गगन उसमें खो-सा गया।

मोहब्बत में होता है सिलसिला रूह को छूने का,
वो तो जिस्म में ही खो-सा गया।

जो पायल पाँवों की कभी दिल लुभाती थी उनका,
आज नींद में खलल हो-सा गया।

वो मोहब्बत के नियम बताने चले आए मुझे,
जो पैसों की नुमाइश में खो-सा गया।

**दीप्ती जैन**

## चाहत

चाहत तो हर जीव में होती
किसी की छोटी तो कहीं बड़ी होती
आज बात करते है पति पत्नी के रिश्ते की
उनकी एक दूसरे से क्या ही चाहत होती।

पुरुष की चाहत ही
बहुत छोटी सी होती
उसके विश्वास का आधार
सादा जीवन उच्च विचार

वह ज्यादा उम्मीदें
कतई नहीं पालता
जीवन साथी को लेकर
दो टूक स्पष्ट राय रखता

देखने में ऐश्वर्या सी हो
रंग रूप फिगर परफेक्ट हो
घरेलू काम की बात आए तो
कांता बाई को फेल करती हो

पति के विषय में
स्त्री भी चाहत रखती
कोई आसमान छूती नहीं
बेहद सामान्य सी वह होती

कमाकर अंबानी की तरह लाए
उसके थोड़े से नखरे भी उठाए
जरा सी गलती गर हो जाए तो
मनमोहन सी चुप्पी पर आ जाए

पति पत्नी का जीवन
दो पहिए की गाड़ी का होता
सधी कदमताल से संतुलन बनता
असंतुलन विवाद का आधार बनता

करो इच्छाओं की पूर्ति एक दूसरे की
जीवन में शांति का आधार बने
ना झगड़ा हो किसी बात पर
दोनों ही एक दूजे के पूरक नज़र आएं

उम्मीद रखनी तो सभी जानते है
पूरी करना कितनो को आता है
जब पूरी नहीं कर सकते हो तब
दूसरे से उम्मीद रखना बेमानी होता है।

**विनय पंवार**

## पगडंडियाँ

दो घरों की फेंस को फाँद कर
चल पड़ती हैं पगडंडियाँ
उन्हें जोड़ते हुए, संवाद स्थापित करते

चल पड़ती हैं वे
गाँव के रास्ते किनारे-किनारे
राजपथ के बगल
फुटपाथ की शक्ल में
पहुँचती हैं राजधानी से
दूर-दराज गाँव-कस्बे तक

जो पगडंडियाँ नदी के एक तट से
धँसकर निकलती हैं दूसरे तट
वही पहुँचती हैं पठारों-पहाड़ों के शिखर
सघन वनों में नहीं भूलतीं वे अपना रास्ता

ज़ेहन में जब खुलती है कोई खिड़की
पगडंडियाँ बनती हैं विचारों की
विकास के रास्ते खुल पड़ते हैं तब कई-कई

हजार-हजार टेढ़े मेढ़े रास्ते जीवन के
अंत में एक पगडंडी में तब्दील हो जाते हैं
जिस पर चलकर लोग आपके कर्म याद करते हैं।

**शुचि मिश्रा,**
**गुरुग्राम**
**हरियाणा**

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

# त्यागपत्र (पुस्तक समीक्षा)

आज मैं जिस पुस्तक के बारे में अपने विचार साझा करने जा रही हूं, वह है जैनेन्द्र कुमार द्वारा रचित उपन्यास "त्यागपत्र"। प्रेमचंद के समकालीन उपन्यासकार श्री जैनेन्द्र विरचित यह एक बेहद मार्मिक और हृदय- विदारक उपन्यास है जिसका प्रथम प्रकाशन 1937 में हुआ था। इस उपन्यास का अनुवाद अनेक प्रादेशिक एवं विदेशी भाषाओं में भी हो चुका है। केवल 85 पृष्ठों का यह लघु उपन्यास हाथ में लेने में भले ही पतला-सा लगता हो लेकिन पाठकों के दिलों पर लंबे समय तक बेहद गहरी छाप छोड़ जाने में सक्षम है। यहाँ पर यह कहना कतई ग़लत न होगा कि 'देखन में छोटन लगे, घाव करे गंभीर'। ठीक वैसे ही इसकी मार्मिकता एवं मनोवैज्ञानिक भाव पाठकों के मन में कई तरह के द्वंद पैदा करते हैं। तभी तो हिंदी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में गणनीय मृणाल नामक भाग्यहीना युवती के जीवन पर आधारित यह मार्मिक कथा अत्यंत प्रभावशाली बन सकी है। उपन्यास में लेखक जैनेन्द्र कुमार ने अपने पात्र भतीजे प्रमोद के रूप में अपने बचपन से लेकर जवानी तक की घटनाओं की मार्मिकता का बेहद सूक्ष्मता से मनोविश्लेषण किया है।

बचपन में चंचल स्वभाव की कल्पना परे लड़की जो अपने माता-पिता के निधन के बाद भी अपना बचपना भाई-भाभी एवं खुद से छ: साल छोटे भतीजे के साथ रहते हुए भी बरकरार रखना चाहती है। लेकिन नियति ने जिसकी किस्मत में ही संताप लिखा हो वो उपर की हंसी और मुस्कान से नहीं मिट सकता। रूप कितना भी सुंदर क्यूं न हो, जब किस्मत कुरूप निकल जाए तो व्यक्ति की अपनी हँसी को मटियामेट करके उम्र भर उसपर पूरी दुनिया को हंसने के बहाने दे जाती है।

भाई-भाभी के साथ रहते हुए भी बस मृणाल का भतीजा प्रमोद ही उसका एकमात्र सहारा बना। दोनों बुआ भतीजा एक-दूसरे के दर्द को बिना कहे सुने ही भांप लेते थे। मृणाल के जीवन में तुफान तब शुरू होता है जब अपनी सहेली शीला के घर आने-जाने के क्रम में उसके भाई के प्रति झुकाव हो जाता है। यह बात ज्यादा दिनें तक भाई-भाभी से छुप नहीं पाती है और आवेश में आकर भाभी किसी जल्लाद की भांति बेंत से उस लड़की की जमकर इतनी ज्यादा पिटाई कर देती है कि उसकी वजह से मृणाल उठने-बैठने, और यहां तक कि दर्द से बोलने तक में अक्षम होती है। फिर केवल मार-पीट तक ही सीमित नहीं रहता है यह अत्याचार। इसके तुरंत बाद ही स्कूल जाना छुड़वाकर आनन-फानन में बिना जांचे-परखे एक अधेड़ उम्र के विधुर से उसका विवाह करवा दिया जाता है। और फिर उसके बाद भी उसके प्रेम की भनक लगते ही उसका पति भी उसे अपने घर से निकाल देता है।

समय बीतता जाता है और अब प्रमोद एक जज के पद पर कार्यरत हो जाता है। लेकिन पति के अत्याचार से पीड़ित मृणाल एक कोयला बेचने वाले पुरूष के स्नेह का शिकार होकर उसके द्वारा भी त्याग दिए जाने पर एक-से- दूसरे और दूसरे-से-तीसरे जगह भागती और ठोकरें खाती फिरती रहती है। प्रमोद के लाख मनुहार पर भी अपनी बेबसी को खुद में समेटे हुए ही वह स्नेहिल भाव से ही मगर प्रमोद के साथ रहने से इंकार कर जाती है। क्योंकि वह जानती है कि जिसका पति सगा नहीं होता उसे न तो ससुराल और न ही मायका कभी अपना पाता है। ऐसी ही बदनसीब ज़िन्दगी जीती हुई मृणाल कुछ सालों बाद दर-बदर भटकती इस दुनिया से विदा ले लेती है। प्रमोद इस घटना के बारे में जानकर बुआ के लिए कुछ न कर पाने की आत्मग्लानि से पूरी तरह टूट जाता है। पश्चाताप में डुबकर अपने पद से "त्यागपत्र" दे देता है।

आकांक्षा प्रिया



अंतर्मन को झकझोर देने वाली इस लघु उपन्यास की कहानी बेहद गहरी है और इसके मर्म को संक्षेप में चन्द शब्दों में समझ या समझा
पाना संभव नहीं। इस उपन्यास की गहराई को भांपने के लिए और इसकी मार्मिकता के भाव को महसूस करने के लिए इसे पढ़ा जाना जरूरी है।





जैनेन्द्र कुमार

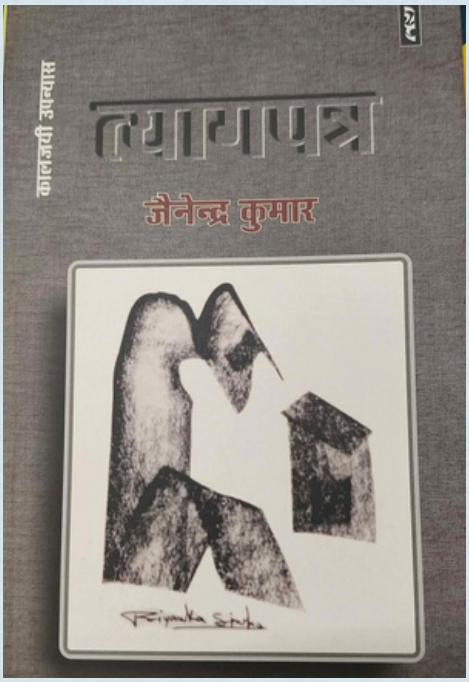

जन्म : 2 जनवरी 1905, कोड़ियागंज, अलीगढ़ (उ.प्र.)। 1919 में पंजाब से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। 1920 से स्वतन्त्रता संग्राम के आन्दोलनों में भाग लेना प्रारम्भ किया। 1923 में ऐतिहासिक झण्डा सत्याग्रह में भागीदारी के कारण तीन माह का कारावास। इसी वर्ष से लेखनारम्भ। 'देश जाग उठा था' शीर्षक से लिखा लेख 'देवी अहिंसे' नाम से चर्चित हुआ। 1929 में प्रथम कहानी संग्रह 'फाँसी' और प्रथम उपन्यास 'परख' प्रकाशित। 'त्यागपत्र' उपन्यास (1937) के साथ कथा साहित्य में विधिवत प्रतिष्ठित। अनेक वर्षों तक लेखन व राजनीति में समानरूपेण सक्रिय। 1946 में राजनीतिक सक्रियता से विराग एवं सर्वतोभावेन लेखन व चिन्तन को समर्पित। साहित्य अकादेमी की स्थापना (1954) पर पण्डित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में बनी प्रथम उच्चस्तरीय समिति में अबुल कलाम आज़ाद, डॉ. राधाकृष्णन एवं हुमायूँ कबीर के साथ शामिल। 'मुक्तिबोध' उपन्यास पर साहित्य अकादेमी सम्मान (1968)। 1971 में भारत सरकार द्वारा पद्मभूषण। साहित्य अकादेमी की 'महत्तर सदस्यता' तथा 'अनुव्रत सम्मान' से विभूषित (1982)। 1984 में उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का सर्वोच्च सम्मान 'भारत भारती'। चौरासी वर्ष का तप:पूत यशस्वी जीवन जीकर 24 दिसम्बर 1988 को महाप्रयाण।

प्रमुख रचनाएँ : परख, सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी, सुखदा, विवर्त, व्यतीत, जयवर्धन, मुक्तिबोध, अनामस्वामी, दशार्क (उपन्यास); फाँसी, अपना-अपना भाग्य, नीलम देश की राजकन्या, जाह्नवी, साधु की हठ, अभागे लोग, दो सहेलियाँ, महामहिम (कहानी-संग्रह); समय और हम; समय, समस्या और सिद्धान्त; काम, प्रेम और परिवार; पूर्वोदय; मंथन; साहित्य का श्रेय और प्रेय; वृत्त विहार; राष्ट्र और राज्य; कहानी—अनुभव और शिल्प; बंगलादेश का यक्ष प्रश्न (निबन्ध व विचार संग्रह); इतस्तत:, मेरे भटकाव, स्मृति पर्व, कश्मीर की वह यात्रा, विहंगावलोकन (ललित निबन्ध व संस्मरण)।

सेतु प्रकाशन
www.setuprakashan.com
₹85
उपन्यास
पेपरबैक

# गीत

गंध मादक रंग वरणी का हरा है
उर के मधुबन में विचरती अप्सरा है
प्रीत का मकरंद गोचर है अधर पर
नैन में निर्मोघ आमंत्रण भरा है

देह का अभिषेक फूलों के हवन से
हैं मुखर आहूतियाँ झरते नयन से
प्रीत के अक्षत समिधा में समाहित
हैं तुम्हें अर्पित सुगंधित भाव मन के
अब प्रणय के यज्ञ का ही आसरा है
उर के मधुबन में विचरती अप्सरा है

गुदगदी शय्या बिछी आराम कर लो
हे अतिथि कुंज में विश्राम कर लो
मुक्त कर दो छद्म तन को आवरण से
मोक्ष का सामीप्य अपने नाम कर लो
बन गगन बरसो कहीं प्यासी धरा है
उर के मधुबन में विचरती अप्सरा है

साँझ के अनुराग से कुछ मंत्रणा कर
कर निशा निर्वाण की उदघोषणा कर
आस के दीपक जलें अंतिम पहर तक
कल सुबह दिनकर की उज्जवल कामना कर
लक्ष्य का विश्वास भी सहमा डरा है
उर के मधुबन में विचरती अप्सरा है

प्रीत का मकरंद गोचर है अधर पर
नैन में निर्मोघ आमंत्रण भरा है
गंध मादक रंग वरणी का हरा है
उर के मधुबन में विचरती अप्सरा है



दिनकर राव दिनकर

# ललक

ज़िंदगी एक दौड़ है-
बैसाखी पर चलने की लाचारी नहीं
न हीं घुटनों के बल
चलने का नाम है-
जिसे वक़्त अपने डंडों से हाँकता रहे
और प्रतिस्पर्धी
दौड़ की चाहत लिए
पिछड़ जाए।

तेज़ चलना आदत तो भली है
पर उसमें कभी धीमी रफ़्तार की
नकेल भी लगाइए।
ताकि
पिछड़ते पल के साथ
वर्त्तमान की लय बरकरार रहे।

बावजूद इसके
लोग जीत जाते हैं,
क्योंकि
हारनेवालों में
जीतने की ललक नहीं होती !

डॉ. कृष्ण कन्हैया
बर्मिंघम, इंग्लैंड

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वाराणसी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
शुक्रवार, 22 मई 2026

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

# लघुकथा
## चेतना का स्पर्श

कीर्तिपुर की बर्फीली हवाएँ चीड़ (सल्ला) के पेड़ों से टकराकर एक मद्धम संगीत पैदा कर रही थीं। नवीन और प्रज्ञा पुस्तकालय के पीछे गिरे हुए चीड़ के पत्तों के ढेर पर बैठे थे। उनके बीच एक शारीरिक दूरी तो थी, पर मन एक-दूसरे के करीब पहुँचने को आतुर थे।

"प्रज्ञा, क्या तुम्हें नहीं लगता कि यह शरीर केवल एक सीमा है?" नवीन ने चीड़ का एक पत्ता घुमाते हुए पूछा।

प्रज्ञा ने अपनी साड़ी का पल्लू सँभाला और नवीन की आँखों में देखा। उन आँखों में एक गहरी शून्यता थी और उतनी ही गहरी जिज्ञासा। उसने कहा, "शरीर सीमा नहीं नवीन, यह तो एक माध्यम है। हम विचारों में चाहे जितने स्वतंत्र हो जाएँ, अंत में इसी देह की अनुभूति से आकर टकराते हैं। फ्रायड और मार्क्स की बहसों से मस्तिष्क तो भर जाएगा, लेकिन रगों में दौड़ती इस प्यास को कौन सा दर्शन शांत करेगा?"

वातावरण में एक भारी सन्नाटा छा गया। नवीन ने साहस जुटाकर प्रज्ञा का हाथ थामा। उस स्पर्श में एक विद्युतीय तरंग थी। हथेलियों के उस सामान्य मिलन में उसने ब्रह्मांड की संपूर्ण ऊर्जा महसूस की।

"यह सिर्फ समीपता नहीं है प्रज्ञा," नवीन की आवाज थोड़ी भारी हो गई, "यौनिकता तो वास्तव में दो अस्तित्वों के विलय की छटपटाहट है। जब मैं तुम्हारा हाथ थामता हूँ, तो मैं सिर्फ मांस और हड्डियों का स्पर्श नहीं पाता, मैं तुम्हारी चेतना की गहराई को छूना चाहता हूँ।"

प्रज्ञा थोड़ा और करीब आई। उनकी साँसों की गर्माहट नवीन के गालों पर महसूस हो रही थी। उन्होंने मधुर स्वर में कहा, "तो फिर यह लुका-छिपी क्यों? यदि यह मिलन एक सत्य है, तो हम शब्दों का सहारा क्यों लेते हैं? शायद, यौनिकता की अंतिम मंजिल शरीर का नग्न होना नहीं, बल्कि आत्मा की नग्नता है, जहाँ पहुँचने के बाद कुछ भी छिपाना शेष नहीं रहता।"

उस एकांत में, चीड़ के पेड़ गवाह थे। उनके कंधे आपस में टकराए। वहाँ कोई शारीरिक संसर्ग तो नहीं हुआ, लेकिन उन्होंने एक-दूसरे के मौन को स्पर्श किया। उन्होंने समझा— पुस्तकालय की भारी किताबों ने जीवन का जो सत्य नहीं समझाया था, वह इस एक छोटे से स्पर्श और उससे पैदा हुई थरथराहट में छिपा था।

सूरज जब टौदह के पानी में डूब रहा था, वे अपने अस्तित्व की एक नई परिभाषा लेकर नीचे की ओर चल पड़े।

**कथाकार: योगी नारायण नाथ**
**स्थान: इटहरी, सुनसरी- नेपाल**

# "कुछ खास लिखें"

पतझड़ को मधुमास लिखें,
पीड़ा को परिहास लिखें ।

नए शब्द नई उपमा देकर,
आओ हम कुछ खास लिखें।

दद्दा के दागी दामन को,
जनमत का विश्वास लिखें।

कुपोषण से मरा है कोई,
आस्थामय उपवास लिखें।

चिथड़े लिपटी नग्न देह को,
आधुनिक लिबास लिखें।

इधर तलाक उधर तलाश,
नवयौवन का आभास लिखें।

गुरु-शिष्या की नैन ठिठौली,
रिश्तों की अरदास लिखें ।

मात-पिता को लिखकर पाती
वृद्धाश्रम 'निवास' लिखें ।

हम दरबारी दानवीर हैं,
झूठन को गौ - ग्रास लिखें।

कह "प्रदीप" क्यों न इसे हम,
संस्कारों का ह्रास लिखें ।

**स्वाधिकार रचना: प्रदीप कुमार अरोरा, पुणे (महाराष्ट्र)**

# दोस्त बचपन का,..

दोस्त बचपन का मुझसे जुदा हो गया
आजकल मुझसे क्यूं वो ख़फ़ा हो गया

जिसके जैसा वफ़ादार कोई न था
वो वफ़ादार अब बेवफ़ा हो गया

करता है बदकलामी सभी से बहुत
आदमी कितना ये सरफ़िरा हो गया

जब लड़ाई ये बच्चों की हद से बढ़ी
एक पल में बड़ा मारिका हो गया

रूठा रूठा है क्यूं बोल मेरे सनम
ये बता कैसे ये सिलसिला हो गया

बात इतनी बड़ी तो नहीं थी मगर
दरमियां दोनों के फासला हो गया

हो गया जब से ज़रदार वो आदमी
तब से उसका अलग रास्ता हो गया

सबका वो दिल से करने लगा एहतराम
जब से बेटा हमारा बड़ा हो गया

ऐसे बेटे से राज़ी ख़ुदा कैसे हो
'अपने वालिद से ही जो ख़फ़ा हो गया'

आई है जब से इक्कीसवीं ये सदी
आदमी आदमी से जुदा हो गया

ख़ुद की ख़ातिर ही जीने लगा आदमी
इसका महदूद अब दाएरा हो गया

आ गया क़ौल ग़ालिब का 'क़ासिम' को याद
दर्द का हद से बढ़ना दवा हो गया

**क़ासिम बीकानेरी**

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वारासिवनी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
शनिवार, 23 मई 2026



## मुरलीधर

प्रभु दमकते नटवर नंदलाला
मुरली अधरों पर धरे ग्वाला
मुरली मोहन मधुर तान वाला
बजे बांसुरी मोहित करती है

प्रभु स्वांग रचा श्याम संग राधा
श्याम रूप मनोहर कभी राधा
बिखरे केशों में कृष्ण कन्हैया
छवि राधेश्याम मोहित करती है

गले वैजयंती माल को झोला
प्रेम को बांधे सब और डोरा
रसिया मनभावन चमके गोरा
धवल भूषा मोहित करती है

आंखों में मिलन की आशा है
ओठों रचे स्वर अभिलाषा है
सांसों पे स्नेह अंतस अवलंबन
सांसों से सांसें मोहित होती हैं

छोड़ूं तुझे या कसकर थाम लूं
चित्तचोर को यह हृदय वार दूं
प्रेयस आलिंगन अमृत अनंत
प्रभु कृपा भक्तों पर होती है।।

कवि:
संदीप नेमा दीप,
भोपाल

## कविता

पानी सा वजूद है मेरा
हर शय में घुल कर
उसके जैसी हो जाती हूं
पिता के प्राणों में
लाडली बेटी
बन कर घुल गई,
भाई के लाड में
चंचलता बन कर,
पति के दिल में
उसकी रानी बन घुली,
बच्चों के अंदर
ममता बन घुल रही,
क्योंकि पानी का अपना
कोई रंग नहीं होता

अनुपमा शर्मा
रुड़की

## 'वह' यह चाहती है...

सपना शर्मा 'रूचि'

'वह' यह चाहती हैवह किसी ऐसे इंसान को चाहती है
जो हर गुजरते दिन के साथ
उसके और करीब आना चाहे।

वह किसी ऐसे को चाहती है
जो उसके प्रति अपना स्नेह जताए...
क्योंकि इस समय उसे पहले से कहीं ज़्यादा
उस भरोसे की ज़रूरत है।

वह किसी ऐसे को चाहती है
जो सच में उसकी परवाह करे
और दुनिया से यह कहने में गर्व महसूस करे
कि वह उसकी है।

वह किसी ऐसे को चाहती है
जो उसकी मुस्कान बचाने के लिए
दुनिया से भी लड़ जाए।

वह किसी ऐसे को चाहती है
जो समझे कि बात उसे पूरी दुनिया देने की नहीं,
बल्कि अपनी दुनिया में
उसे सबसे अहम महसूस कराने की है।

वह किसी ऐसे को चाहती है
जो समय निकालकर
उसकी आत्मा को जाने,
उसके भीतर के व्यक्ति को समझे।

वह किसी ऐसे को चाहती है
जो उन घावों को भरने में मदद करे
जिनके लिए कभी किसी ने माफ़ी नहीं मांगी।...

वह किसी ऐसे को चाहती है
जो जीवन के कठिन मोड़ों पर
उसका हाथ थामे खड़ा रहे।

वह किसी ऐसे को चाहती है
जो उसकी कमियों को देखकर भी
उसे दुनिया की सबसे खूबसूरत स्त्री समझे।

वह किसी ऐसे को चाहती है
जो उसे अपने करीब रखकर कहे
“तुम्हारा मेरी ज़िंदगी में आना
मेरे लिए किसी आशीर्वाद से कम नहीं।”

लेकिन सबसे ज़्यादा...
वह किसी ऐसे को चाहती है
जो उसके दिल को
उस तरह संभाले,
जैसा उसने कभी सोचा भी न हो।

## सिमटते रिश्तों की मद्धम आँच...

घर अब घर नहीं रहा,जबकि
दीवारें, दरवाज़े, आँगन वही
पर उनमें बसने वाली गर्माहट
जाने कब चुपचाप चली गई।
रसोई की आँच ठंडी नहीं हुई,
पर उसमें पकती संवेदनाएँ कम हो गई हैं,
उसमें अब केवल भोजन पकता है,
पर अपनापन का स्वाद नहीं।
संयुक्त परिवार अब एक स्मृति है
धूल झाड़ते यादों के एलबम में
बेटे के बचपन को ,मोबाइल में
पोते की तस्वीर से मिलाते
हुबहू एक जैसी दिखने की खुशी
त्यौहारों पर ही असीमित होती है ।
माँ की पुकार, पिता की आँखों का
इंतज़ार
अब मोबाइल की घंटियों में,
ऑनलाइन सुनाई दिखाई पड़ता है
चेहरे हथेलियों में सिमट कर रह गए हैं।
सुविधाएँ, साधन, सम्मान,
नौकरी,स्टेटस की चाह में
कुछ अनमोल पीछे छूट गया कि
बावजूद हर सुविधा से लबालब
भीतर रिक्तता घर कर गयी है
जहाँ समय की कमी नहीं,
समय देने की इच्छा कम हो गई है।
एक कुर्सी में सिमटती
किराए की बालकनी में
घर के आंगन का विकल्प ढूंढते,
मौसी,मामी, बुआ नहीं बुलाती कोई
सिर्फ अंकल आंटी के शहर में।
सब व्यस्त हो गये अपने-अपने वृत्तों में,
और इन वृत्तों के बाहर जा रही
रिश्तों की स्पर्श रेखा धुंधली सी
अनकही दूरी का दर्द लिए।
फिर भी दिल के किसी कोने में
एक घर अब भी बसा है,
जहाँ लौटने की इच्छा
धीरे-धीरे धड़कती रहती है।
शायद समाधान बड़ा नहीं
बस इतना कि
हम अपनी प्राथमिकताओं में
थोड़ी-सी जगह
उन लोगों के लिए बचा लें
जो कभी हमारी पूरी दुनिया थे।

दिलीप आचार्य सोमेश्वर बांसवाड़ा राज

## कविता

रह गई प्यासी धरा अब सूखते सागर सभी
रेत में तब्दील नदियाँ गुमशुदा अंबर सभी

मौत है बस मौत का भय हर नज़र में देखिए
खो गये इस ज़िन्दगी में जीने के अवसर सभी

भूख के सैलाब ने लीला करोड़ों को यहाँ
मुफलिसी की आँधियों ने रौंद डाले घर सभी

देखिए इंसानियत की नींव भी हिलने लगी
देवता बनने को बाकी रह गए पत्थर सभी

इक जुलाहे ने बुना था एकता विश्वास को
रंग दिया किसने लहू से प्रीत की चादर सभी

हाथ में खंज़र लिए आँखों में नफरत देखिए
आजकल तलवार पर है प्रेम के अक्षर सभी

राह में दीपक जलाकर थे उजाले बाँटते
लोग सच्चे खो गये हैं देख वो दिनकर सभी

दिनकरराव
दिनकर

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वाराणसी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
रविवार, 24 मई 2026



# कहानी : क्या खोया क्या पाया...

आज शाम फिर वही हुआ...

ओम जी ने अपना तीसरा पेग बनाया तो भावुक हो उठे। चालीस साल बीत गये... आज दिल सवाल कर रहा है, क्यों भाई ओम प्रकाश चावला, क्या खोया क्या पाया।

बेचैनी में उठ कर अपने कमरे में चलना शुरू कर दिया। मगर चलने से सवालों के जवाब कहां मिला करते हैं। बल्कि बेचैनी अलग बढ़ गयी। चालीस साल पहले बीबीसी रेडियो पर हिन्दी के समाचार पढ़ने के लिये लंदन आये थे। आज उन्हें अपनी ही कोई ख़बर नहीं कि उन्हें करना क्या है।

चालीस साल पहले एक नवयुवक था। दिल्ली के हंसराज कॉलेज से एम.ए. हिन्दी की डिग्री हासिल करने के बाद डॉक्ट्रेट भी पूरी की। किस्मत में बेरोज़गारी से किसी प्रकार का संघर्ष नहीं लिखा था। समाचार पत्र में नौकरी देखी। अप्लाई कर दिया और नौकरी मिल भी गयी। उसकी गहरी बेस वाली आवाज़ के कारण सभी दोस्त कहा करते थे, यार तुम तो पूरे देवकी नंदन पाण्डेय की तरह बोलते हो। उसे अपने आपको अशोक वाजपेयी की आवाज़ पसंद थी। थोड़ा तुनक कर कहता, "यार ध्यान से सुनो... ! मेरे हिसाब से मेरी आवाज़ अशोक वाजपेयी जैसी है।"

"क्यों जी, भला देवकी नंदन पाण्डेय की आवाज़ में क्या कमी है?"... सुधा उसे बार-बार चिढ़ाया करती।

"समझा करो यार। पाण्डेय जी की आवाज़ में बुज़ुर्गियत है... अशोक वाजपेयी की आवाज़ युवा खनक लिये है।"

"चलो अच्छा है विनोद कश्यप जैसी आवाज़ नहीं चाहते तुम। "सुधा उसे हमेशा चन्दर कह कर बुलाया करती। आज भी यही कहती है। उसने तो ओम से शादी के बाद अपना नाम ही सुधा चन्दर चावला कर लिया था।

सुधा को हमेशा भारत से प्यार था। उसे वहां के जीवन से कोई शिकायत नहीं थी। मगर ओम जी हालांकि पढ़े लिखे तो हिन्दी ही थे मगर नख़रे पूरे अंग्रेज़ों वाले थे। वक्त की पाबंदी ओम जी के व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण हिस्सा है। अपनी इस आदत के कारण हमेशा परेशानी उठाते हैं। उन्हें सबसे अधिक शिकायत लन्दन के हिन्दी वालों से है। कभी कोई कार्यक्रम वक्त पर शुरू नहीं होता। कोई भी वक्ता अपना भाषण समय पर समाप्त नहीं करता। और विषय पर कोई बोलता नहीं। तैयारी करके तो कोई नहीं आता।

केवल राज ही एक ऐसा इन्सान था जिसके साथ ओम जी को साहित्यिक बातचीत में कुछ मज़ा आता था। राज ख़ुद भी लिखता था और रहता भी ओम जी के घर के करीब ही था। सडबरी कोर्ट पर दस बारह घरों की दूरी पर दोनों रहते थे। कभी-कभार एक दूसरे के साथ कॉफ़ी पी लेते थे। मगर उसूल पक्का था कि दोनों केवल आपस में साहित्यिक मित्र हैं... या नहीं भी हैं; इसमें पारिवारिक कुछ नहीं। राज को ओम जी की पैनी साहित्यिक नज़र बहुत पसंद थी। मगर उनमें एक समस्या थी कि वे किसी भी लेखक की तारीफ़ नहीं कर पाते थे। हर वो कहानी, उपन्यास या कविता जिसकी आमतौर पर पर आलोचक तारीफ़ करते, ओम जी उसकी धज्जियां उड़ाने में एक पल ज़ाया नहीं करते थे।

ओम जी किसी तरह के पंथी नहीं थे – ना तो वामपंथी और ना ही दक्षिणपंथी। वे केवल और केवल ओम-पंथी थे। शायद इसीलिये उन्होंने हर विधा में लिखा... पहला संग्रह कविताओं का; उसके बाद ग़ज़लों का; फिर बारी आई कहानी की और उसके बाद व्यंग्य! उनका एक संकलन लघु कथाओं का भी था... प्रेमचन्द की कहानियों पर तो उनका शोध था ही। ओम जी ने प्रेमचन्द की कहानियों पर बेहतरीन काम किया था। उनकी किताब की मदद लेकर दिल्ली विश्विवद्यालय के प्रोफ़ेसर प्रेमचन्द की कहानियां विद्यार्थियों को समझाया करते थे।

ओम जी शुद्ध हिन्दी बोला करते थे। मगर राज के साथ पंजाबी में ही बात होती थी। शायद शुरूआत राज ने ही की थी। राज पंजाबी को लेकर एक विचित्र सी बात कहा करता था, "यार पंजाबी में ठहाका भी अलग ही माहौल पैदा करता है।" ओम जी आख़िर थे तो इन्सान ही। सोचते भी कि यार मेरे लेखन पर भारतीय आलोचकों की निगाह क्यों नहीं जाती? क्यों हिन्दी के बड़े आलोचक उनकी उपलब्धियों पर कभी बात नहीं करते? एक दिन राज के सामने अपने दिल का हाल कहते-कहते रुंआसे से हो गये। हुआ कुछ यूं कि राज ने उनसे कहा, "ओम जी, आपके लेखन पर तो भारत के आलोचकों ने बहुत कुछ लिखा होगा। अगर आपके पास कटिंग्स मौजूद हों तो मैं एक आलोचनात्मक पुस्तक संपादित कर सकता हूं। इससे शोधार्थियों को भी लाभ होगा और आपके लेखन पर उपलब्ध आलोचनात्मक सामग्री एक ही जगह एकत्रित भी हो जाएगी।"

ओम जी ने लगभग रुआंसी आवाज़ में कहा, "राज जी, मेरे लेखन के साथ ट्रेजेडी यही है कि बड़े आलोचकों ने कभी मेरे लेखन पर कुछ लिखा ही नहीं। दरअसल, मैंने सब लंदन आने के बाद ही लिखा है। और मैं किसी की चमचागिरी करता नहीं हूं। मेरे हिसाब से अच्छा लिखना ज़्यादा ज़रूरी है। मेरे जीवन में नहीं तो मेरे मरने के बाद शायद मजबूर हो जाएंगे लिखने के लिये।"

ओम जी के दिल का दर्द राज तक पहुंच रहा था। राज के पक्ष में एक बात जाती थी कि वह स्वयं सृजनात्मक लेखक नहीं है। इसलिये ओम जी के साथ उसका रिश्ता बराबरी का बन पाया है। लेखकों के साथ ओम जी का व्यवहार अलग ही होता था। लेखक या कवि उनके लिये इन्सान कम होता था और लेखक अधिक।

ब्रिटेन के हर हिन्दी लेखक के मन में एक ही चाहत थी कि डॉ चावला उनके लेखन पर कुछ कह दें या लिख दें। अगर ओम जी किसी के लेखन की झूठी तारीफ़ भी कर देते तो सामने वाला तो कृतार्थ हो जाता। उनसे लिखित तारीफ़ की अपेक्षा करना तो लगभग मूर्खता ही हो सकती थी।

पढ़ते बहुत थे ओम जी... जन्म पाकिस्तान के स्यालकोट में हुआ था। बचपन में उर्दू भी सीख ली थी। इसलिये उरदू भी लिख पढ़ सकते थे। भारत में आकर गुरमुखी भी सीख ली थी... पंजाबी साहित्य भी पढ़ लेते थे। हिन्दी साहित्य में तो डॉक्टरेट की थी। अंग्रेज़ी तो आती ही थी... यानी कि चार-चार भाषाओं का साहित्य पढ़ने वाले ओम जी हर लेखक से अपेक्षा रखते थे कि वह उनकी ही तरह पहले अच्छा पढ़े और उसके बाद ही लिखने के लिये क़लम उठाए। लंदन का हर लेखक उनसे प्रशंसा भी चाहता था और उनकी साफ़गोई से डरता भी था।

ओम जी की लिखाई बहुत कमज़ोर थी। लगता था जैसे डॉक्टर का प्रेस्क्रिप्शन हो। शायद वे स्वयं भी अपनी लिखाई नहीं पढ़ पाते थे। इसलिये वे रेडियो स्टेशन के प्रसारण के लिये रोमन लिपि में अपनी हिन्दी के समाचार टाइप किया करते थे। मगर उन्हें रोमन लिपि में हिन्दी पढ़ने का इतना अभ्यास हो चुका था कि वे कभी भी अपने प्रोग्राम में कहीं अटकते नहीं थे। वे उसी आसानी से रोमन लिपि में हिन्दी पढ़ लेते थे जैसे कि हम सब देवनागरी लिपि में पढ़ते हैं।

राज और ओम जी के व्हिस्की के ब्राण्ड अलग-अलग थे। राज तो ऐसा ब्राण्ड पीता था जिसका नाम बहुत कम लोगों ने सुन रखा था। ओम जी किसी भी ब्राण्ड की सिंगल मॉल्ट पी लिया करते थे। वैसे उनकी प्रिय ग्लेनफ़िडिश ही थी। व्हिस्की में पानी या सोडा डालना उनको बिल्कुल पसंद नहीं था। उनका मानना था कि सिंगल मॉल्ट या तो नीट पी जाए या फिर ऑन दि रॉक्स यानी कि बर्फ़ पर डाल कर।

राज एक ऐसी व्हिस्की का दीवाना था जो हर जगह मिलती ही नहीं थी। एक बार कहीं अचान उसे 'वुड्समैन' व्हिस्की पीने को मिल गई तब से वह इसी ब्रॉण्ड के साथ जुड़ गया। मगर यह ब्राण्ड अधिकांश पबों में मिलता ही नहीं। इसलिये वह जब भी ओम जी के साथ बैठता है तो ओम जी का ब्राण्ड ही पी लेता है। - दोनों में एक बात की पूरी समझ बनी हुई है कि पब का बिल आधा-आधा बांट कर भुगतान करते हैं।

यह एक ग़ज़ब का रिश्ता था जो कि कोस्टा कॉफ़ी या पब तक सीमित था। कभी कभार किसी साहित्यिक कार्यक्रम में इकट्ठे हो जाया करते थे। राज की तो पत्नी थी नहीं मगर उसने कभी ओम जी की पत्नी को नहीं देखा था। ना कभी ओम जी ने राज को अपने घर दावत दी और ना ही राज ने कभी उन्हें अपना बेचलर्स फ़्लैट दिखाया। पूरी तरह से अंग्रेज़ी दोस्ती थी दोनों में। एक दिन दो पैग के बाद राज ने कह ही दिया, "ओम जी, आप इतने बड़े लेखक हैं... अगर आप पर आलोचनात्मक ग्रन्थ नहीं छपा है तो कम से कम अभिनंदन ग्रन्थ तो छप सकता है। आप कहिये तो मैं आपके दोस्तों को चिट्ठी भेजता हूं या ईमेल करता हूं। अब तो भारत में भी लोगों के ई-मेल बन चुके हैं। प्रकाशक से बात कर लेते हैं। फिर आप तो बीबीसी वाले हैं... ग्लैमर तो जुड़ा ही है आपके नाम के साथ।"

"राज जी, बात तो आपकी समझ में आ रही है।... यह बताइये कि मेरे लेखन को भारतीय आलोचक गंभीरता से क्यों नहीं लेते?"

"सर जी पहली बात तो यह कि आप मेरे नाम के साथ जी मत लगाया करिये। आप वरिष्ठ हैं, आप मुझे राज कह कर बुलाया करें।... दूसरी बात का जवाब मैं अगर सच-सच दूंगा तो आप बुरा मान जाएंगे।"

"नहीं नहीं राज जी, मैं वादा करता हूं कि बुरा नहीं मानूंगा। मैं दरअसल समझना चाहता हूं कि ग़लती हो कहां गई है। और यह भी कि ग़लती मेरी है या फिर आलोचक जानबूझ कर मुझे नेगलेक्ट कर रहे हैं।"

भुनी हुई मुंगफली के कुछ दाने मुंह में डालते हुए राज ने कहा, "ओम जी आपने एक कहानी संग्रह, एक कविता संग्रह, एक ग़ज़ल संग्रह, एक लघु-कथा संग्रह, एक व्यंग्य संग्रह और एक संस्मरण संग्रह प्रकाशित किया है। यह अच्छा है कि आपने अभी तक उपन्यास नहीं लिखा वरना आप उपन्यासकार भी बन जाते। अब समस्या यह है कि आपने कुल छ: किताबें लिखी हैं मगर अलग-अलग विधा में लिखी हैं। यानी कि हर विधा में आपकी पुस्तक पहली पुस्तक है। यानी कि हर किताब में पहली किताब वाली कमज़ोरियां हैं। यदि यह तमाम किताबें एक ही विधा की होतीं तो आप उस विधा के उल्लेखनीय लेखक तो बन ही गये होते। कपिल देव जैसे ऑल-राउंडर क्रिकेट के लिये तो ठीक हैं, मगर साहित्य में ऐसा नहीं होता!"

ओम जी एकदम सन्नाटे में रह गये। उन्होंने इस दृष्टि से तो अपने लेखन के बारे में कभी सोचा ही नहीं था। वे कितनी आसानी से दूसरों के साहित्य पर कठोर से कठोर टिप्पणी बिना पलक झपके कर दिया करते थे। आज पहली बार किसी ने उनके लेखन के बारे में एक सच्ची बात उनके ही मुंह पर कहने की हिम्मत कर दी... और वो भी उनके आग्रह करने पर... अचानक सिंगल मॉल्ट के स्वाद में कुछ परिवर्तन सा महसूस होन लगा।

कहां तो ओम जी को मन ही मन गर्व की अनुभूति होती थी कि उनके खाते में हिन्दी की तमाम विधाओं की एक-एक पुस्तक मौजूद है और कहां उनकी यही विशेषता उनके लेखन की कमज़ोरी बन कर उभर आई है। वे समझ रहे थे कि निरंतर एक विधा में लिखना तो उनके लेखन में अधिक पुख़्तापन ले ही आता। ओम जी ने जैसे बिना बहस किये ही हार मान ली थी। यह उनके व्यक्तित्व के बिल्कुल विपरीत था। वे तो अपनी बात के लिये कटने मरने को तैयार हो जाते थे। और इस मामले में इतनी आसानी से बात उनको समझ आ गई !... हैरानी तो राज को भी हो रही थी... मगर वह गिलास में बर्फ़ डाल कर उस पर सिंगल मॉल्ट उंडेल कर बर्फ़ के पिघलने का आनंद उठा रहा था।

"हाँ तो तुम अभिनंदन ग्रन्थ की बात कर रहे थे..." ओम जी की रुचि अब साफ़ दिखाई देने लगी थी।

"ओम जी, कुछ इस तरह सोचते हैं कि आपके बीबीसी के सहयोगी... कुछ आपके दिल्ली के दोस्त... और दो चार साहित्यकार जो आपके निजी मित्र हों... कुल मिला कर बीस या पच्चीस लेख हो जाएं तो दो से अढ़ाई सौ पृष्ठों का अभिनंदन ग्रन्थ तैयार हो सकता है।"

"मगर छापेगा कौन? ऐसी किताब में किस प्रकाशक को रुचि हो सकती है भला?"

"देखिये ओम जी, यह ग्रन्थ हम छपवा रहे हैं अपनी ख़ुशी के लिये। तो कुछ पैसे तो जेब से निकालने ही पड़ेंगे। आजकल अस्सी पिच्चासी रुपये का पाउंड है। बीस एक हज़ार रुपये में काम हो जाना चाहिये। प्रकाशक से पहले ही तय कर लेंगे कि हमें कितनी प्रतियां चाहियें। बीस हज़ार में सौ प्रतियां तो दे ही देगा।"

"सौ किताबों का मैं क्या करूंगा?"

"ओ सर जी करना क्या है... किताब का लोकार्पण करेंगे। उस दिन सेल काउंटर लगा देंगे। चालीस परसेंट डिस्काउंट में जितनी किताबें निकल जाएंगी उतनी निकाल देंगे और बाकी दोस्तों यारों और परिवार वालों को भेंट कर देंगे।... बात तो शुगल मेले की है और आपकी इमेज बिल्डिंग की है।...

सोचिये आजतक लंदन के किसी भी हिन्दी लेखक का अभिनंदन ग्रन्थ कहां छपा है? शुरूआत आपसे ही होगी।" ओम जी पूरी तरह से भावुक हो गये... उनके दिमाग़ में यह बात पूरी तरह से बैठ गई थी कि यह अभिनंदन ग्रन्थ उनके जीवन की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि होने वाली है।... आज उन्होंने राज को पब का बिल भी शेयर नहीं करने दिया। बस यही कहा, "हुण तुसी ऐस प्रोजेक्ट नाल पूरी तरह जुड़ जाओ। इन्हूं हुण मेरा नहीं, अपणा प्रोजेक्ट समझना है तुसी।" उनकी आवाज़ भीगी हुई थी और यह पक्का था कि सिंगल मॉल्ट के कारण नहीं भीगी थी उनकी आवाज़।

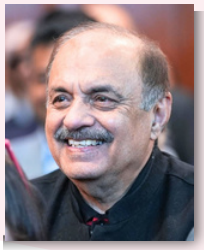

ओम जी में एक बदलाव आने लगा था। अब वे लंदन के अपने सहयोगी लेखकों की रचनाओं में मीन-मेख कम निकालने लगे थे। सकारात्मक बोलें या ना बोलें... नकारात्मक बोलना बंद कर दिया था। उनकी आँखों के सामने बस एक ही सपना दिन भर नाचता रहता। उन्होंने अपने अभिनंदन ग्रन्थ का कवर पेज भी बनाना शुरू कर दिया था। नीला उनका प्रिय रंग था और वही रंग होने वाला था अभिनंदन ग्रन्थ का।

अब राज से हर रोज़ दिन में चार पाँच बार बात होती... निरंतर लेखकों से संपर्क रहता। प्रकाशक तय हो गया... पैसे तय हो गये... ओम जी की आँखों में एक नये किस्म की चमक साफ़ देखी जा सकती थी। लंदन के नेहरू सेंटर का सभागार... वहां उनके अभिनंदन ग्रन्थ का लोकार्पण... और ना तो कुछ सुझाई देता था और ना दिखाई... अब उस ग्रन्थ में सब लिखा जाएगा... क्या खोया... क्या पाया !

तेजेन्द्र शर्मा

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

## नवगीत धरती की धूपघड़ी

शिवानन्द सिंह 'सहयोगी' वाराणसी

धरती की धूपघड़ी
कल से खराब है।

आँखों से ओझल है
सपनों का गाँधी
पुरवा के साथ हुई
पूरब की आँधी
झंझा का झोंका है
बादल नवाब है।

शाम से टपकता है
ओला का गोला
लटका है काँधे पर
सर्दी का झोला
क्षोभक्षेत्र पागल है
पीए शराब है।

भूतल की छाती पर
फिसलन है हावी
गंगा का घाव हरा
रोती है रावी
मौसम का खेला है
टटका जवाब है।

## जीवन का अर्थ सुलझा पाओगे...

नंदिता तनूजा, लखनऊ

मन की लाज क्या रखा पाओगे
सहा हुआ तंज़ क्या लौटा पाओगे ..
कभी कड़ुवाँ घूंट पिया शब्दों का
जलन की आग क्या बुझा पाओगे ....

रूखी-सुखी सब बता तो दिया
भूखे पेट को क्या समझा पाओगे
जीवन अपनी तपती धूप के जैसी
मन की पीड़ा क्या मिटा पाओगे ....

चुभती आँखों में किरचे टूटे है सपने
इरादों पे खुद को क्या चला पाओगे
सच और समय का गहरा अध्ययन
बातों को कभी क्या निभा पाओगे ....

विचारो का यहां सुन्दर ताना-बाना
आईने का सच क्या दिखा पाओगे
जीवन में जो कह दिया वही करना है
कर्म क्षेत्र में खुद को क्या उतार पाओगे
...

अर्थ से मिलना तो कभी अर्थ का अनर्थ
तंज़ की बात मन से क्या भूला पाओगे
तमाम उम्र की उदासियाँ है मुस्कुराती
अर्थ जीवन का क्या कभी सुलझा
पाओगे ..!!

## बौद्धिक भारत

एलिजा कुमारी ( बेगूसराय, बिहार)

जागो, जागो , फिर से जागो,
भारत के परिज्ञान तुम जागो,
विश्व गुरु बनना है हमकों,
भारत के विप्रवर तुम जागो।
कालिदास कविता संग जागो,
तुलसीदास मानस ले जागो,
जागो आर्यभट्ट तुम भी जागो,
खगोलशास्त्र महान ले जागो।

जागो ,जागो, फिर से जागो,
भारत के परिज्ञान तुम जागो।
सुश्रुत शल्य चिकित्सा संग जागो,
चरक,चरक संहिता ले जागो,
जागो जीवक तुम भी जागो,
औषधि का सारा ज्ञान ले जागो।

जागो ,जागो, फिर से जागो,
भारत के परिज्ञान तुम जागो।
चाणक्य अपने नीति के संग जागो,
स्वामी भारत के प्रतिनिधि बन जगो,
जागो बुद्ध , महावीर भी जागो,
दिव्य प्रकाश देने तुम जागो।

जागो, जागो, फिर से जागो,
भारत के समस्त ज्ञान तुम जागो,
बौद्धिक भारत बनना है हमको,
भारत का बच्चा -बच्चा जागो।

## गीत

तुम हो सुंदरता की मूरत रूप का तुम मूल हो
मोगरे का फूल हो तुम,मोगरे का फूल हो

तुम हँसो तो सीपियाँ मन की खुलें मोती झरें
लब जो खोलो ख़ुशबुओं से देर तक महके रहें
मन तुम्हारा ऐसा है जैसे हो शीतल चाँदनी
नैन चंचल,नर्म नाज़ुक है बदन जैसे कली

मेरे जीवन की नदी का तुम सुहाना कूल हो
मोगरे का फूल हो तुम,मोगरे का फूल हो

सुरमई इक शाम हो सिर्फ़ मेरे नाम की
होंठ जैसे रसभरे हैं आँख सूरत जाम की
तेरे माथे की ये बिंदी है सितारा भाग्य का
तेरे हाथों की ये मेंहदी रंग है सौभाग्य का

मेरे जीवन की नदी का तुम सुहाना कूल हो
मोगरे का फूल हो तुम,मोगरे का फूल हो

सुभाष पाठक 'ज़िया'

## रिश्ते

रिश्ते वही मजबूत होते हैं,
जो बिन कहे महसूस होते हैं।
यह कथन बिल्कुल सत्य है,
इसीलिए कुछ रिश्ते खास होते हैं।
वो हर पल साथ निभाते हैं,
चुपके से साया बन जाते हैं।
दिल के इतने करीब रहते हैं,
जितनी साँसें नसीब में बसती हैं।
रिश्ते-नाते हम भूलते नहीं,
वो तो जीने की वजह बन जाते हैं।
इन्हें पाकर जीवन महक उठता है,
हर साँस में ख़ुशबू भर जाते हैं।
बिन बोले जो समझ लेते हैं,
वो रिश्ते ईश्वर की देन होते हैं।
दूरियाँ भी इन्हें कमज़ोर नहीं करतीं,
दिल की गहराई में बसते हैं।

स्वरचित व मौलिक
दीपिका मोयल 'दीप'
जोधपुर,राजस्थान

## कविता

अब दूर हैं वो हमसे , माने न दिल हमारा
क्यूँ भूलता नहीं दिल,वो प्यार प्यारा प्यारा

मतलब नहीं जहां से, मकसद नहीं ख़ुदा से
इन दिल की धड़कनों में बस नाम है तुम्हारा

अब वो नहीं मेरा , माने न दिल दिवाना
समझेगा कब न जाने ,क़िस्मत का ये इशारा

जाने ये कैसी भटकन,कैसी ख़लिश है दिल में
दिन-रात हूँ भटकता, मिलता नहीं किनारा

दिल मेरा कह रहा है ,तुम फिर मिलोगे मुझको
रूठा रहेगा कब तक ,क़िस्मत का ये सितारा

कपिल कुमार
बेल्जियम

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वारासिवनी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
मंगलवार, 26 मई 2026

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

# जीवन में मौसम का खेल

सामने पड़ जाने पर
अनचाहे ही सही
अनायास टकरा जाने पर
तुम्हे कुछ नही होता
नही पड़ता स्मृतियों पर बल
भावनाएं उद्दीप्त नही होती
चाहत नही जागती

और भी ऐसे ही कई सवाल
झर रहे थे उसकी आंखों से
प्रेम के पावक की
ज्वाला में जलकर
खुद भी ज्वाला बन चुकी
उस देह की दाहकता से
थर्रा रहा था अनंग

क्या कहता उसे
कैसे छूटा वह सिरा
कैसे बीच में खड़ा हो गया
जिम्मेदारियों का पहाड़
या गलतफहमियों की
आ गई भीषण बाढ़

नही जानना था उसे
गुजरे हुए वक्त के
अंधेरे का अबूझ सत्य
नही सुनना था
क्या हुआ
क्यों हुआ
कैसे हुआ की दलील

उसे जानना था
इसके बाद भी
मसृण-मसृण
कोमल-कोमल
रातरानी की खुशबू सा
तरल और घुलनशील
बचा रह गया जो
वह क्या है

क्या है जो
उमड़-उमड़ आता
घुमड़-घुमड़
लरक-लरक
लुढ़क-ढरक
बरस-बरस जाता

कहाँ जाता-पहुंचता
किसे छूता-नही छूता
जीवन में
मौसम का ये खेल
कौन खेलता
क्यों खेलता
तुम्हारे पास है इसका लेखा

संतोष कुमार द्विवेदी

# पत्तलों का स्वाद और बचपन की यादें

प्रिय मित्रों,
नमस्कार

बचपन की कुछ यादें ऐसी होती हैं जो समय बीतने के साथ और भी मधुर लगने लगती हैं। आज जब बड़े-बड़े भोजों में सैकड़ों व्यंजन सजते हैं, तब अक्सर मुझे अपने बचपन की वे पत्तलें याद आती हैं जिनमें बैठकर हम बड़े आनंद से भोजन किया करते थे।

उस समय न तो खाने में इतनी विविधता होती थी और न ही दिखावे का चलन। पत्तलों में पूड़ी, एक-दो सब्जियाँ, थोड़ा सा गलका, शक्कर और साथ में मट्ठा — बस यही हमारी दावत होती थी। सब्जियों में अरवी, कद्दू, आलू-टमाटर या कटहल की सब्जी बन जाती थी और हम बड़े प्रेम से खा लेते थे। तब यह सोचने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी कि क्या खाएँ और क्या छोड़ें। जो सामने परोस दिया गया, वही प्रसाद समझकर संतोष से खा लिया।

आजकल भोज में लोग भोजन कम और उसकी समीक्षा अधिक करते दिखाई देते हैं। एक दावत में एक सज्जन मिले। उन्होंने बड़े गर्व से कहा कि वे हर व्यंजन का थोड़ा-थोड़ा स्वाद लेते हैं ताकि पता चल सके कि भोजन कैसा बना है। मैंने मुस्कुराकर कहा — "क्या भोजन की क्वालिटी जाँचने की ज़िम्मेदारी मेरी ही है?" मुझे तो भाई शुरू का साधारण स्ट्राटर ही अच्छा लगता है, अधिक तेल-मसाले वाला भोजन अब पचता ही नहीं।

कुछ दिन पहले मैं अपनी धर्मपत्नी को बचपन की यही बातें सुना रहा था। मैंने यूँ ही कह दिया कि बहुत दिनों से पत्तलों में भोजन नहीं किया। फिर क्या था! वे पास के पार्क से बड़े-बड़े पत्ते ले आईं। छूल के न सही, किसी दूसरे पेड़ के ही सही, पर उन्होंने बड़े प्रेम से पत्तलों की व्यवस्था की और पूड़ी, सब्जी तथा शक्कर के साथ वैसा ही भोजन परोस दिया जैसा बचपन में मिला करता था।

सच मानिए, उस दिन भोजन का स्वाद केवल खाने में नहीं था, बल्कि उन यादों में था जो वर्षों बाद फिर से जीवित हो उठीं। ऐसा लगा जैसे समय पीछे लौट गया हो और मैं फिर से अपने पुराने दिनों में पहुँच गया हूँ।

आज मैं यह प्रसंग अपने हमउम्र साथियों के साथ इसलिए साझा कर रहा हूँ ताकि वे भी अपने बचपन की उन सादगी भरी यादों तक पहुँच सकें। यदि मन में इच्छा हो तो बिना किसी खर्च के वही आनंद आज भी पाया जा सकता है।

कभी समय निकालिए, पत्तलों में सादा भोजन कीजिए।
शायद आपको भी अपने बचपन की वह खोई हुई मिठास फिर से मिल जाए।

उमानाथ त्रिपाठी

# सिमटते रिश्तों की मद्धम आँच

घर अब घर नहीं रहा,जबकि
दीवारें, दरवाज़े, आँगन वही
पर उनमें बसने वाली गर्माहट
जाने कब चुपचाप चली गई।
रसोई की आँच ठंडी नहीं हुई,
पर उसमें पकती संवेदनाएँ कम हो गई हैं,
उसमें अब केवल भोजन पकता है,
पर अपनापन का स्वाद नहीं।
संयुक्त परिवार अब एक स्मृति है
धूल झाड़ते यादों के एलबम में
बेटे के बचपन को, मोबाइल में
पोते की तस्वीर से मिलाते
हुबहू एक जैसी दिखने की खुशी
त्यौहारों पर ही असीमित होती है।
माँ की पुकार, पिता की आँखों का इंतज़ार
अब मोबाइल की घंटियों में,
ऑनलाइन सुनाई दिखाई पड़ता है
चेहरे हथेलियों में सिमट कर रह गए हैं।
सुविधाएँ, साधन, सम्मान,
नौकरी,स्टेटस की चाह में
कुछ अनमोल पीछे छूट गया कि
बावजूद हर सुविधा से लबालब
भीतर रिक्तता घर कर गयी है
जहाँ समय की कमी नहीं,
समय देने की इच्छा कम हो गई है।
एक कुर्सी में सिमटती
किराए की बालकनी में
घर के आंगन का विकल्प ढूंढते,
मौसी - बुआ नहीं बुलाती कोई
सिर्फ अंकल आंटी के शहर में।
सब व्यस्त हो गये अपने-अपने वृत्तों में,
और इन वृत्तों के बाहर जा रही
रिश्तों की स्पर्श रेखा धुंधली सी
अनकही दूरी का दर्द लिए।
फिर भी दिल के किसी कोने में
एक घर अब भी बसा है।

- दिलीप आचार्य "सोमेश्वर"

# सीपी में पलते हैं मोती

सीप में पलते हैं मोती जाने किसकी किस्मत में क्या होगा

दहक रहीं सूरज की किरणें जाने दिन कैसा होगा
आतप की घनघोर जलन से हर पादप प्यासा होगा।

आज प्रकृति ज्वाला में जलती कल का मौसम क्या होगा
सीपी में पलते हैं मोती किसकी किस्मत में क्या होगा।

सागर से मिलती है नदिया खो देती अस्तित्व जहां
धरा गगन का स्नेह मधुर पर मिलन पर्व का क्या होगा।

दोनो केवल साथ साथ चलने का हैं संकल्प लिये
निर्झर से धरती के आंसू जीवन का सावन क्या होगा।

सीपी में पलते हैं मोती किसकी किस्मत में क्या होगा।

पद्मा मिश्रा.जमशेदपुर

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वाराणसी (म.प्र.)

पं.क्र.(04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
बुद्धवार, 27 मई 2026

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

# प्रेमहीन जीवन जैसे पत्रहीन गाछ

**मैं** साँवली हूँ न, इसीलिए किसी ने मुझसे प्रेम नहीं किया। सुरभि ने सन्नाटे को तोड़ते हुए कहा।

क्यों, सांवली होना गुनाह है क्या ? सिद्धांत ने उसकी ओर देखते हुए पूछा।

एक शारीरिक कमी तो है....? सुरभि ने उसकी आंखों में आंखें डालते हुए कहा। कतई नहीं। मैं इसे नहीं मानता।असली सौंदर्य तो मन का होता है।

मैं साँवली थी, इसीलिए कितने लड़कों ने मुझे रिजेक्ट कर दिया। माँ - बाबूजी भी तंग आ चुके थे। फिर मेरी शादी ऐसे लड़के से हो गयी कि...! मेरी जिंदगी तो ऐसे ही...! - बोलते-बोलते सुरभि अचानक रूक गयी।

और सुंदरता कोई गुण नहीं होता। मेरे माँ - पिताजी ने सुंदर लड़की से मेरी शादी तो करा दी, पर रूप के अहंकार, ईगो और रोज-रोज की कलह ने मेरे जीवन के सारे सपने जलाकर राख कर दिए। आज क्या है मेरे पास...कुछ नहीं।सिद्धांत के मन की पीड़ा भी सारे बांध तोड़कर बह चली थी।

कालेज से निकलने के बीस वर्षों बाद मिले सिद्धांत और सुरभि आज अपने दिल की किताब का पन्ना-पन्ना खोल देना चाहते थे।

पार्क के कोने वाली बेंच पर वे चुपचाप बैठे हुए थे। उनकी आँखें भींगी हुई थी। थोड़ी झिझक के साथ सिद्धांत ने सुरभि का हाथ अपने हाथों में ले लिया।सुरभि ने भी तनिक प्रतिरोध नहीं किया।देर तक दोनों इसी तरह हाथों में हाथ डाले बैठे रहे।सिद्धांत सुरभि की हथेलियों को सहलाता रहा।

सुरभि भी जैसे असीम शांति में चुपचाप लीन थी।दोनों एक - दूसरे को एकटक निहारते रहे।एहसासों की बारिश में भींगते रहे।समय का भान तक नहीं रहा।

सुरभि घर लौटी ही थी कि मोबाईल पर सिद्धांत का मैसेज आया।वह वहीं खड़ी-खड़ी मैसेज पढ़ने लगी....

" ..... सुरभि, आज तुम्हारा हाथ पकड़कर देर तक बैठना मेरी मन और आत्मा तक को तृप्त कर गया।जी कर रहा था कि मैं ऐसे ही तुम्हारा हाथ पकड़े रहूँ और समय रूक जाए। इस परम आनंद को शब्दों में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। इस पल को मैं संजोकर रखूँगा... हमेशा-हमेशा के लिए। तुमने अपनी हथेलियों के कोमल, स्नेहिल स्पर्श की जो अनमोल अनुभूति मुझे दी है, उसके सामने दुनिया की सारी दौलत व्यर्थ है। मेरे उदास-निराश जीवन के कोरे कागज पर तुमने खुशियों के अनगिनत रंग भरकर इसे पूर्ण कर दिया है। "

सुरभि की उँगलियाँ मोबाईल पर उगे अक्षरों को छू रही थीं और उसकी आँखों से टपकती अश्रु की बूँदें शब्दों को भिंगोए जा रही थीं...।

**डा.विजयानन्द 'विजय', बक्सर**

## सबसे बड़ा रचनाकार

इस दुनिया को रचने वाला,
हर तकलीफों से बचाने वाला,
वह करता है सृजन, करता है कल्याण,
भर देता है हम सब में प्राण।

कवि तो रचता है समाज को,
पर जिसने रचा यमराज को,
उसकी कृति सबको स्वीकार है,
वह बड़ा रचनाकार है।

ईश्वर की कृति है कवि,
जिसने दी है समाज की छवि,
समाज सुधार के लिए कलम उठाया,
भाव से भरपूर सृजन से हमें रुलाया।

एक कवि जिसने रचा है समाज को,
एक ईश्वर जिसने रचा है परम सत्य यमराज को,
दोनों में बड़ा कौन है?
सबसे बड़ा रचनाकार कौन है?

कवि की कलम में क्रांति होती है,
उसकी स्याही में आंधी होती है,
पर जिसने हवा को जन्म दिया,
वह बड़ा रचनाकार है जिसने हमें अन्न दिया।

**प्रणव राज,**
**कवि, स्वतंत्र स्तंभकार,**
**कैमूर, बिहार**

## *जीता हुआ में राही

### (मनहरण घनाक्षरी काव्य)

हालातों ने बड़ा किया,ठोकरों ने सीखा दिया।
देख ऐ जिंदगी मुझे,हम रूकेंगे नहीं।

गमों के संग है खेलें,तुफां में चले अकेले।
बढ़ते रहेंगे आगे,हम रूकेंगे नहीं।

अश्क पी लिए हमने,सितम ढाएं तुमने।
कोशिशें तेरी नाकाम,हम रूकेंगे नहीं।

प्यारा बचपन भूलें,तपती आग में ढलें।
दुखों को छोड़के पीछे,हम रूकेंगे नहीं।

आंधी बनके निकलें,बुलंदी छूए हौसलें।
जीत का नशा मन में,हम रूकेंगे नहीं।

जब तक चलें सांसें,नहीं शिकवा किसी से।
अटल मेरा भरोसा,हम रूकेंगे नहीं।

ग़म ही ग़म है देखें,कौन वो मुझको रोकें।
बेखौफ कदम मेरे,हम रूकेंगे नहीं।

हालातों ने बड़ा किया,कहां से कहां में आया।
देख ऐ जिंदगी मुझे,जीता हुआ मै राही - -

**प्रा.गायकवाड विलास**
**मिलिंद महाविद्यालय लातूर , महाराष्ट्र**

## घर नहीं है हमारा जन्नत है

माँ ही रब है सवाल रखा है
मेरा कितना ख्याल रखा है
पूजता क्यूँ मै रहा पत्थर को
जबकी माँ ने सम्हाल रखा है

मेरे सर पर पिता का साया है
जो भी माँगा है सब ही पाया है
मैंने देखा है रूप भगवन का
जो भी हूं उनकी छत्रछाया है

इतनी खुशियाँ जो मैंने पायी है
मेरे जो भी हैं मेरे भाई है
उनके होने से मुझमे हिम्मत है
मेरी दौलत मेरी कमाई है

मेरी प्यारी सी इक बहना है
वो धरोहर वो ही गहना है
जमाने भर की खुशी बस उसे ही देना
मेरा रब से यही तो कहना है

मै हूं राजा वो मेरी रानी है
मेरी माँ की बहु वो रानी है
मुझपे ऐसे गरजती रहती है
जैसे बिजली वो आसमानी है

सब है राजी सभी का ही मत है
हमनें मिलकर ही मांगी मन्नत है
अपने घर को बनाया मंदिर सा
घर नहीं है हमारा जन्नत है

**किशोर छिपेश्वर "सागर", बालाघाट**

कृति चर्चा एवं समीक्षा

# अंतर्मन से उपजी कविताओं का आत्मीय दस्तावेज काव्य संग्रह 'मनसुख'

**"मनसुख : अंतर्मन से उपजी कविताओं का आत्मीय दस्तावेज"**

**"मनसुख"** शीर्षक अपने भीतर एक गहन अर्थवत्ता समेटे हुए है। यह केवल बाहरी प्रसन्नता का द्योतक नहीं, बल्कि मन के भीतर उपजने वाले उस आत्मिक संतोष और आनंद का संकेत है, जो जीवन के विविध अनुभवों से निर्मित होता है। मेरे आत्मीय मित्र संदीप नेमा 'दीप' का काव्य-संग्रह **"मनसुख"** इसी अंतर्मन के सुख, संवेदना और जीवन-दृष्टि का सजीव प्रतिबिंब प्रस्तुत करता है। संग्रह की भावभूमि को समझने के लिए कविता **"ज़िंदगी और मौत"** की पंक्तियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—

**"ज़िंदगी से कहा हमने हम प्यार करेंगे, मौत भी आये तो हम स्वीकार करेंगे।**
**ज़िंदगी और मौत का हो रहा मंथन, किसी का किसी पर नहीं कोई बंधन..."**

इन पंक्तियों में जीवन के प्रति स्वीकृति, संतुलन और एक शांत दार्शनिक दृष्टि दिखाई देती है। यही स्वर पूरे संग्रह में अंतर्धारा के रूप में प्रवाहित होता है और पाठक को आत्ममंथन के लिए प्रेरित करता है।

इस काव्य-संग्रह में कुल **101** कविताएँ हैं, जो जीवन के विविध आयामों को सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करती हैं। कवि ने इन्हें विषयानुसार संयोजित कर एक स्पष्ट संरचना दी है। संदीप नेमा जी का मूल स्वर आस्थामूलक है, जिसके कारण अधिकांश कविताएँ पाठक को आध्यात्मिक ऊँचाइयों की ओर ले जाती हैं। इनमें श्रद्धा, विश्वास और आत्मिक जुड़ाव का सौम्य प्रकाश परिलक्षित होता है। **"अर्पण अभिषेक"** कविता में यह आस्था अत्यंत सहज रूप में अभिव्यक्त हुई है- **"बिल्व पत्र न मिले कोई गम नहीं, शमी न हाथ आए कोई डर नहीं।**
**न हो दूध गंगा का जल अभिषेक, ले कर भाव मन कर तू अभिषेक।"**

यहाँ कवि बाह्य आडंबर से अधिक अंतःकरण की पवित्रता को महत्त्व देता है।

संग्रह की लगभग दस से अधिक कविताएँ पारिवारिक संबंधों की आत्मीय दुनिया को जीवंत करती हैं। पिता, माता, पत्नी और दादा जैसे रिश्तों के माध्यम से कवि ने घरेलू संवेदनाओं को मार्मिक ढंग से उकेरा है। **"मेरी माँ"** कविता इसका सशक्त उदाहरण है— **"उसे प्रचार की नहीं, प्यार की जरूरत है,**
**ब्रांडिंग की नहीं, अंतरंग की जरूरत है..."** और
**"बैठी हो अकेले में जब कभी, दिल से मुलाकात की जरूरत है..."**

इन पंक्तियों में आधुनिक जीवन के कृत्रिम प्रदर्शन के स्थान पर सच्चे और आत्मीय संबंधों की आवश्यकता को रेखांकित किया गया है। यह भाव सहज ही पाठक के निजी अनुभवों से जुड़ जाता है। कवि ने अपने कार्यक्षेत्र से जुड़े विषय—विद्यालय, शिक्षक दिवस और हिंदी दिवस—को भी अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। इन कविताओं में उसका शिक्षक-मन, कर्तव्यबोध और भाषा-प्रेम स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होता है, जिससे संग्रह में सामाजिक और व्यावहारिक आयाम भी जुड़ता है। साथ ही, इस काव्य-संग्रह में इतिहास-बोध की एक हल्की किंतु अर्थपूर्ण उपस्थिति भी दिखाई देती है। ग्यारसपुर जैसे ऐतिहासिक स्थल के संदर्भ में कवि का दृष्टिकोण केवल वर्णनात्मक नहीं, बल्कि आत्मीय और स्मृतिपरक है। "ग्यारसपुर" कविता की पंक्तियाँ इस भाव को पुष्ट करती हैं— **"शिखरों में माला देवी, देवियों में शीला देवी, सरला देवी...**
**सुंदरियों में विश्व सुंदरी, ग्यारसपुर की शालभंजिका..."**

यहाँ इतिहास और निजी संवेदना का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। भाषा की दृष्टि से "मनसुख" सरल, सहज और संप्रेषणीय है। कवि ने जटिलता और अत्यधिक अलंकारिकता से बचते हुए भावों की स्पष्टता और आत्मीयता को प्राथमिकता दी है। यही कारण है कि यह संग्रह सीधे पाठक के हृदय तक पहुँचने में सफल होता है।

समग्रतः "मनसुख" एक ऐसा काव्य-संग्रह है, जिसमें आस्था, घर-परिवार, समाज, तीज-त्योहार, प्रकृति, पर्यावरण, कर्मभूमि और सांस्कृतिक चेतना के विविध रंग संतुलित रूप में उपस्थित हैं। साथ ही, अतीत की सुनहरी यादों की धुंधली छवियाँ कविता के कैनवास पर अनेक स्थलों पर चित्रित हैं। यह कृति पाठक को जीवन के छोटे-छोटे सुखों की ओर उन्मुख करती है और उसे आत्मावलोकन का अवसर प्रदान करती है। हालाँकि, समीक्षा की दृष्टि से यह भी उल्लेखनीय है कि संग्रह की अधिकांश कविताएँ 'स्वांतः सुखाय' की प्रवृत्ति से प्रेरित प्रतीत होती हैं। इनमें कवि की निजी अनुभूतियाँ और आत्मिक संतोष तो प्रचुर मात्रा में है,किंतु अपने समय के व्यापक सामाजिक सरोकारों और समकालीन यथार्थ से इनका जुड़ाव अपेक्षाकृत कम दिखाई देता है। इसी संदर्भ में यह विनम्र सुझाव दिया जा सकता है कि कवि यदि अपनी संवेदनशीलता को काव्य-परंपरा और समकालीन कविता की प्रवृत्तियों से अधिक जोड़कर देखे, तो उसकी रचनाएँ और अधिक व्यापक, प्रभावशाली तथा समय-सापेक्ष बन सकती हैं।

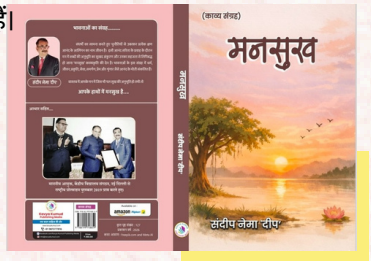


**कवि का आत्मकथ्य इस संग्रह की मूल भावना को स्पष्ट करता है—**

"मेरे लिए मेरा काव्य वास्तव में किसी रत्न से कम नहीं। जब कभी मन में यकबयक उपजते चित्रों को कलम से उकेरा, मेरे लिए वह कविता का स्वरूप लिए अनुपम उपहार रहा। यों, कभी विशेष प्रयत्नों से विषय को बाँधकर परम्परागत रूप से कविता लिखना चाहा, तो सिर्फ विचित्र शब्दों का मेल ही मिला। इसीलिए काव्य मुझे मेरे शब्दों में '**मनसुख**' ही प्रतीत होता है। इस संग्रह में मैंने अपने '**मनसुख**' के ऐसे ही कुछ रत्न जड़ने का योजन किया है।"

यह आत्मस्वीकृति कवि की सहजता और सृजन-प्रक्रिया की प्रामाणिकता को दर्शाती है। अंततः, **संदीप नेमा 'दीप'** जी से यही विनम्र निवेदन है कि कविता केवल भावाभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं, बल्कि एक गंभीर सृजनात्मक कर्म है, जिसका सीधा संबंध सामाजिक सरोकारों से भी होता है। यदि वे अपने भीतर उपजे इन "मनसुख" के रत्नों को व्यापक मानवीय और सामाजिक संदर्भों से और अधिक जोड़ें, तो न केवल उनकी रचनाशीलता और अधिक परिपक्व होगी, बल्कि वे स्वयं के साथ-साथ साहित्य को भी समृद्ध कर सकेंगे।

इस प्रकार "**मनसुख**" एक सच्चे मन से उपजी काव्य-यात्रा है, जो अपनी आत्मीयता, सरलता और संवेदनशीलता के कारण पाठक को स्पर्श करती है तथा भविष्य में और अधिक सशक्त संभावनाओं की ओर संकेत करती है।

सभी कविताएँ अन्तर्लय के निकष पर खरी हैं। कवि ने न तो पारम्परिक कवियों की शैली को अपनाया है, न अपने समय के हस्ताक्षरों का अनुशरण किया है; जो लिखा, स्वयं का, स्वयं के लिए लिखा है।

मनोज जैन मधुर,
नवगीतकार,
भोपाल

रचनाकार :-
संदीप नेमा दीप

पुस्ता विमोचन के पल

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वारासिवनी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
शुक्रवार, 29 मई 2026



कृति चर्चा एवं समीक्षा

# अंतर्मन से उपजी कविताओं का आत्मीय दस्तावेज काव्य संग्रह 'मनसुख'

**"मनसुख : अंतर्मन से उपजी कविताओं का आत्मीय दस्तावेज"**

**"मनसुख"** शीर्षक अपने भीतर एक गहन अर्थवत्ता समेटे हुए है। यह केवल बाहरी प्रसन्नता का द्योतक नहीं, बल्कि मन के भीतर उपजने वाले उस आत्मिक संतोष और आनंद का संकेत है, जो जीवन के विविध अनुभवों से निर्मित होता है। मेरे आत्मीय मित्र संदीप नेमा 'दीप' का काव्य-संग्रह **"मनसुख"** इसी अंतर्मन के सुख, संवेदना और जीवन-दृष्टि का सजीव प्रतिबिंब प्रस्तुत करता है। संग्रह की भावभूमि को समझने के लिए कविता **"ज़िंदगी और मौत"** की पंक्तियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—

**"ज़िंदगी से कहा हमने हम प्यार करेंगे,**
**मौत भी आये तो हम स्वीकार करेंगे।**
**ज़िंदगी और मौत का हो रहा मंथन,**
**किसी का किसी पर नहीं कोई बंधन..."**

इन पंक्तियों में जीवन के प्रति स्वीकृति, संतुलन और एक शांत दार्शनिक दृष्टि दिखाई देती है। यही स्वर पूरे संग्रह में अंतर्धारा के रूप में प्रवाहित होता है और पाठक को आत्ममंथन के लिए प्रेरित करता है।
इस काव्य-संग्रह में कुल **101** कविताएँ हैं, जो जीवन के विविध आयामों को सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करती हैं। कवि ने इन्हें विषयानुसार संयोजित कर एक स्पष्ट संरचना दी है। संदीप नेमा जी का मूल स्वर आस्थामूलक है, जिसके कारण अधिकांश कविताएँ पाठक को आध्यात्मिक ऊँचाइयों की ओर ले जाती हैं। इनमें श्रद्धा, विश्वास और आत्मिक जुड़ाव का सौम्य प्रकाश परिलक्षित होता है।
**"अर्पण अभिषेक"** कविता में यह आस्था अत्यंत सहज रूप में अभिव्यक्त हुई है—

**"बिल्व पत्र न मिले कोई गम नहीं,**
**शमी न हाथ आए कोई डर नहीं।**
**न हो दूध गंगा का जल अभिषेक,**
**ले कर भाव मन कर तू अभिषेक।"**

यहाँ कवि बाह्य आडंबर से अधिक अंतःकरण की पवित्रता को महत्त्व देता है।
संग्रह की लगभग दस से अधिक कविताएँ पारिवारिक संबंधों की आत्मीय दुनिया को जीवंत करती हैं। पिता, माता, पत्नी और दादा जैसे रिश्तों के माध्यम से कवि ने घरेलू संवेदनाओं को मार्मिक ढंग से उकेरा है। **"मेरी माँ"** कविता इसका सशक्त उदाहरण है—

**"उसे प्रचार की नहीं, प्यार की जरूरत है,**
**ब्रांडिंग की नहीं, अंतरंग की जरूरत है..."**
**और—**
**"बैठी हो अकेले में जब कभी,**
**दिल से मुलाकात की जरूरत है..."**

इन पंक्तियों में आधुनिक जीवन के कृत्रिम प्रदर्शन के स्थान पर सच्चे और आत्मीय संबंधों की आवश्यकता को रेखांकित किया गया है। यह भाव सहज ही पाठक के निजी अनुभवों से जुड़ जाता है।
कवि ने अपने कार्यक्षेत्र से जुड़े विषय—विद्यालय, शिक्षक दिवस और हिंदी दिवस—को भी अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। इन कविताओं में उसका शिक्षक-मन, कर्तव्यबोध और भाषा-प्रेम स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होता है, जिससे संग्रह में सामाजिक और व्यावहारिक आयाम भी जुड़ता है।
साथ ही, इस काव्य-संग्रह में इतिहास-बोध की एक हल्की किंतु अर्थपूर्ण उपस्थिति भी दिखाई देती है। ग्यारसपुर जैसे ऐतिहासिक स्थल के संदर्भ में कवि का दृष्टिकोण केवल वर्णनात्मक नहीं, बल्कि आत्मीय और स्मृतिपरक है। **"ग्यारसपुर"** कविता की पंक्तियाँ इस भाव को पुष्ट करती हैं—

**"शिखरों में माला देवी,**
**देवियों में शीला देवी, सरला देवी...**
**सुंदरियों में विश्व सुंदरी,**
**ग्यारसपुर की शालभंजिका..."**

यहाँ इतिहास और निजी संवेदना का सुंदर समन्वय दिखाई देता है।
भाषा की दृष्टि से **"मनसुख"** सरल, सहज और संप्रेषणीय है। कवि ने जटिलता और अत्यधिक अलंकारिकता से बचते हुए भावों की स्पष्टता और आत्मीयता को प्राथमिकता दी है। यही कारण है कि यह संग्रह सीधे पाठक के हृदय तक पहुँचने में सफल होता है।
**समग्रतः** **"मनसुख"** एक ऐसा काव्य-संग्रह है, जिसमें आस्था, घर-परिवार, समाज, तीज-त्योहार, प्रकृति, पर्यावरण, कर्मभूमि और सांस्कृतिक चेतना के विविध रंग संतुलित रूप में उपस्थित हैं। साथ ही, अतीत की सुनहरी यादों की धुंधली छवियाँ कविता के कैनवास पर अनेक स्थलों पर चित्रित हैं। यह कृति पाठक को जीवन के छोटे-छोटे सुखों की ओर उन्मुख करती है और उसे आत्मावलोकन का अवसर प्रदान करती है।
हालाँकि, समीक्षा की दृष्टि से यह भी उल्लेखनीय है कि संग्रह की अधिकांश कविताएँ 'स्वांतः सुखाय' की प्रवृत्ति से प्रेरित प्रतीत होती हैं। इनमें कवि की निजी अनुभूतियाँ और आत्मिक संतोष तो प्रचुर मात्रा में है, किंतु अपने समय के व्यापक सामाजिक सरोकारों और समकालीन यथार्थ से इनका जुड़ाव अपेक्षाकृत कम दिखाई देता है।
इसी संदर्भ में यह विनम्र सुझाव दिया जा सकता है कि कवि यदि अपनी संवेदनशीलता को काव्य-परंपरा और समकालीन कविता की प्रवृत्तियों से अधिक जोड़कर देखे, तो उसकी रचनाएँ और अधिक व्यापक, प्रभावशाली तथा समय-सापेक्ष बन सकती हैं।

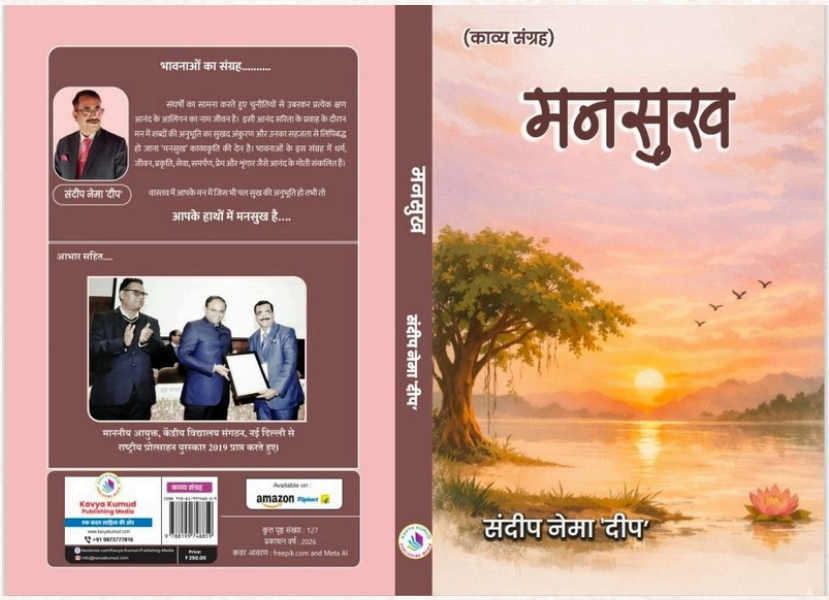


**कवि का आत्मकथ्य इस संग्रह की मूल भावना को स्पष्ट करता है—**
"मेरे लिए मेरा काव्य वास्तव में किसी रत्न से कम नहीं। जब कभी मन में यकबयक उपजते चित्रों को कलम से उकेरा, मेरे लिए वह कविता का स्वरूप लिए अनुपम उपहार रहा। यों, कभी विशेष प्रयत्नों से विषय को बाँधकर परम्परागत रूप से कविता लिखना चाहा, तो सिर्फ विचित्र शब्दों का मेल ही मिला। इसीलिए काव्य मुझे मेरे शब्दों में 'मनसुख' ही प्रतीत होता है। इस संग्रह में मैंने अपने 'मनसुख' के ऐसे ही कुछ रत्न जड़ने का योजन किया है।"
यह आत्मस्वीकृति कवि की सहजता और सृजन-प्रक्रिया की प्रामाणिकता को दर्शाती है।
अंततः, संदीप नेमा 'दीप' जी से यही विनम्र निवेदन है कि कविता केवल भावाभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं, बल्कि एक गंभीर सृजनात्मक कर्म है, जिसका सीधा संबंध सामाजिक सरोकारों से भी होता है। यदि वे अपने भीतर उपजे इन "मनसुख" के रत्नों को व्यापक मानवीय और सामाजिक संदर्भों से और अधिक जोड़ें, तो न केवल उनकी रचनाशीलता और अधिक परिपक्व होगी, बल्कि वे स्वयं के साथ-साथ साहित्य को भी समृद्ध कर सकेंगे।
इस प्रकार "मनसुख" एक सच्चे मन से उपजी काव्य-यात्रा है, जो अपनी आत्मीयता, सरलता और संवेदनशीलता के कारण पाठक को स्पर्श करती है तथा भविष्य में और अधिक सशक्त संभावनाओं की ओर संकेत करती है।
सभी कविताएँ अन्तर्लय के निकष पर खरी हैं। कवि ने न तो पारम्परिक कवियों की शैली को अपनाया है, न अपने समय के हस्ताक्षरों का अनुशरण किया है; जो लिखा, स्वयं का, स्वयं के लिए लिखा है।

मनोज जैन मधुर
गीतकार
106, विट्ठल नगर
गुफामन्दिर रोड, लालघाटी,
भोपाल

रचनाकार :-
संदीप नेमा दीप

पुस्ता विमोचन के पल

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वारासिवनी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
गुरुवार, 28 मई 2026

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

## कविता मौन है

इन दिनों मेरी कविता मौन है,
क्या पता इसके पीछे कौन है।
शब्द, भाव, विचार के बीच
अंतरद्वन्द चल रहा है,
झरने की तरह हर भाव
धीरे -धीरे बह रहा है।
मेरी कविता शायद उदास है,
उसको पढ़ने वाला न आस -पास है।
प्रेम में डूबी कविता लोगों को रास आती है,
मेरी कविता में शायद श्रृंगार की अभिव्यक्ति कम पाई जाती है।
मेरी कविता मुझसे समय मांगती है,
पता नहीं मुझसे क्या -क्या चाहती है।
मैं दिखावे के लिए भाव नहीं जगा पाती,
शायद इसलिए इन दिनों कविता नहीं लिख पाती।
मैंने महसूस किया है कविता मुझे याद कर रही है,
बहुत दिन हुए, कुछ लिखो ये कह रही है।
पर, मैं कैसे कहूँ कि बिना मन के मैं कुछ लिख नहीं पाती हूँ,
जब मन में भाव न हो, मैं कविता रच नहीं पाती हूँ।
थोड़ा विश्राम कर लूँ, फिर कुछ लिखूँगी,
मेरी मौन कविता को, फिर मैं नया रूप दूँगी।

सपना परिहार

## नज़्म

अजब वीरानगी छाई है मौसम पर
गली सुनसान है बे नूर हर मंज़र
हवाएँ धूल ले आती हैं खिड़की पर
कि देती धूप पहरा द्वार पर दिनभर

सो ऐसे वक़्त में,मैं सोचता अक्सर
कि तुम आओगी मिलने बारिशें बनकर
बरस जाओगी बूँदों सी मेरे तन पर
सुनाओगी मुझे ग़ज़लें मेरी गाकर

तुम्हें सोचा फ़क़त मौसम हुआ बेहतर
गली में हलचलें ख़ुश रंग हर मंज़र
हवाएँ खुशबुएँ लाती हैं खिड़की पर
सुनहरी धूप आई द्वार से छनकर

जो सच में आओ तो गुज़रेगी क्या मुझपर
उछलकर दिल मेरा आ जाएगा बाहर
तकेंगी देर तक आँखें भी रह रह कर
चली आओ न रो दूँ मैं यूँ घबराकर

सुभाष पाठक 'ज़िया'

## कागज पर लिखे

कागज पर लिखे
अनेक अक्षर, शब्द, वाक्यांश
साथ ही सरसराती सी आवाज,
जो शायद थी, या शायद नहीं थी।
बस लगा, हैं प्रेमिल भावनाएं...
दोनों गडमगड होकर
इको जो कर रहे थे...

कानों तक आ रही थी
आवर्ती धुन,
जल तरंग करते हुए, बता रहे थे
प्रेम के हैं अनगिनत आयाम

कान-आँख बंद कर सोच रहा था,
कभी-कभी राग भैरवी भी
प्रेम को दूर तलक ले जा सकता है।

हाँ, नयन-नक्श और मादकता
जो पहले अभिवादन के साथ
गुलाबी हुआ,
कह ही बैठा, झूठ-मूठ में

अच्छा लिखते हो।
कुछ झनझनाहट हुई, प्रेम कविता से!

शब्दों - भावों का
अजीब कॉकटेल ही है न
जिसमें नशा तो है
पर नहीं है - अल्कोहल या निकोटीन।

शायद प्रेम ही होगा!!
तभी तो, गुलाबी मुस्कान की छाया में,
मन तो खो गया,
हाँ हर धड़कन में आहट से रागिनी बन गया।

मुकेश कुमार सिन्हा

## क्षण में क्षितिज का आभास

मेट्रो की खिड़की पर धुंधला,सूरज ठहर गया था ,
जैसे किसी ने कांच पर समय, की सांस लिख दी हो!!

भीड़ के शोर में एक चुप्पी, अनसुनी रह गयी,
और उसी चुप्पी में पूरा, आकाश सिमट आया था!!

फ्लाइओवर की छाया में सड़क, थकी हुई सांस लेती है,
ट्रैफ़िक की नसों में जीवन, अधूरा सा बेहता है!!

मोबाईल की नीली रोशनी में, चेहरे खो जाते हैं,
और आँखों के भीतर एक, दूर का सूरज कंपता है!!

कांच की ईमारते बादलों कोई, उधार में लेती हैं,
और हर मंजिल पर एक, सपना लटकता रहता है!!

तभी किसी बच्चे ने,हवा में पतंग छोड़ दी,
और धागे के साथ आसमान थोड़ा और पास आ गया!!

उस छोटे से क्षण में समय, रुक सा गया,जैसे
धरती ने अपनी हथेली पर, क्षितिज रख लिया हो!!

और मुझे लगा दूरियां सिर्फ, देखाने का भ्रम है,
भीतर झांको तो हर क्षण में, क्षितिज दिखाई देता है!!

ऍम. डी. यस. रामालक्ष्मी

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वारासिवनी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
शनिवार, 30 मई 2026



## "वक्त नहीं है, कविता लिखने का"

प्रश्न हुआ उत्पन्न
वक्त है किस के पास
कैसे लिखें कविता
कैसे व्यक्त करें अहसास,

कविता तो श्रृंखला है विचार की
स्वतः उमड़-घुमड़ जाती है,
वक्त- बेवक्त जो शब्द उकेरे
नाम उसी के हो जाती है,

घर के काम में व्यस्त
व्यस्त ही नहीं अस्त-व्यस्त
एक माँ जब सुनती है
अपने बेटे का रूदन
कमर में खोसा पल्लू ढीला कर
गोद में ले उसे
कोने में दुबक जाती है,
जब छाती की बूंदे
लल्ला के कंठ को कर तर
गट-गट सा संगीत सजाती है
ओंठ सिले रहते हैं पर
मां की ममता
बिन बोले
एक कविता रच जाती है।

नहीं है वक्त
उसके पास
ऑफिस की तैयारी है
समय की मारामारी है
कभी ऊपर- नीचे लगे बटन
सही ढंग से जमाने में
कभी टाई की नॉट सही लगाने में
झुंझलाहट आ जाती है,
तभी
दरवाजे पर
सालों बाद आई
आश्चर्य का तोहफा लाई
मां के कदमों की आहट
नया साज सजाती है
सभी व्यस्तता भूल
बेटे की भुजाएं
चरणों मे झुक जाती है
यह संस्कारों की घड़ी
अभिनव वंदना गाती है,
बूढ़ी मां भी कुछ बुदबुदाती है
बिना वक्त वहीं
एक कविता बन जाती है।

नहीं है वक्त
कविता लिखने का
किसी के पास,
क्योंकि
जीवन में आदर्श है
एकाकी जीवन में ही हर्ष है,
बीतते रहे वर्ष-दर-वर्ष
पूरा किया फर्ज पर फर्ज,
अपनों का परिवार और
बहुत बड़ा समाज है,
यकायक उसने फिर सोचा
कौन, कब तक, किसके साथ है,
इन्हीं अहसासों के बीच
एक आवाज
व्यस्तता और बढ़ाती है,
दिल में उतर कर न जाने कब
अपना हक जताती है,
तब गहरी व्यस्तताओं में बोलो
क्या नींद नहीं उड़ जाती है,
कहो वक्त के चंद लम्हें वो
चुपके से नहीं चुराती है,
आप कुछ लिखें न लिखें
आपकी जागी आंखें
नई कविता सुनाती है,
सुबह -सबेरे देख तुम्हें
दुनिया प्रभातीं गाती है।

याद रखियेगा
'वक्त मिलता नहीं चुराया जाता है',
काव्य हो या कला
उसमें डूब जाया जाता है।
अभिव्यक्ति है तो स्पंदन है
वरना
जीवन नीरस है,
आत्मा का क्रंदन है।

प्रदीप कुमार अरोरा

## स्वरचित कविता - "मैं आम इंसान हूँ"

मैं आम इंसान हूँ....

मैं आम इंसान हूँ
कोई खास नही।

जानती है जो, दो कदम चल उस पार जाना है
बन मुसाफ़िर, सफ़र ज़िंदगी का निभाना है।

जानती हूँ, अंधियारों से लड़
स्वयं दिन का उजाला लाना है।
सपनों को अपने, सच
कर उन्हें दिखाना है।

रोज़मर्रा की ज़िंदगी में खुश कैसे रहना है
ज़िंदगी की इस उधेड़ बुन में यह भी सुलझाना है।

जीवन की लहरों से निकल अब,
कश्ती पार लगाना है।
मैं आम इंसान हूँ,
कोई खास नही।

जानती हूँ, रब की मर्ज़ी के बिना
पत्ते एक भी हिला नही करते,
कार्य जिसको जो सौंप दिए "उसने"
सब वो करने पड़ते है।

धूप से छांव, छांव से धूप
आंधी बारिश तब सहने है पड़ते।

कठिन से सरल, तो कभी सरल से कठिन
तब बनना है मुझको पड़ता।

मैं आम इंसान हूँ, कोई खास नही
जानती हूँ, दो कदम चल उस पार जाना है।
बन मुसाफ़िर, सफ़र ज़िंदगी का निभाना है।

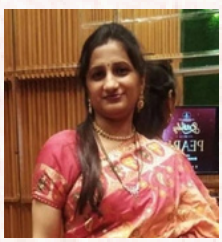

विशाखा सिंघल (दिल्ली)

## ग़ज़ल

थोड़ी और जवानी बाक़ी।
थोड़ी सी नादानी बाक़ी।

पंछी की परवाजों में हैं,
थोड़ी और रवानी बाक़ी।

तन की सारी आग बुझाली,
मन की एक बुझानी बाक़ी।

सबको समझा,बूझा,जाना,
अपनी एक कहानी बाक़ी।

सीधे - सादे इस जीवन में,
थोड़ी सी शैतानी बाक़ी।

कहली, सुनली बूझ इशारे,
थोड़ी बात ज़ुबानी बाक़ी।

नवीन माथुर पंचोली
अमझेरा धार मप्र 454441

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वारासिवनी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
रविवार, 31 मई 2026

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

## रखो संतुलन

कोई अपना नहीं होता जग में,
ऐसा कभी भी मत सोचना।

मत करना कभी भी तुलना,
स्वयं को मत छोटा समझना।

ईश्वर की सुंदर कृति तुम हो!
जीवन अपना धन्य समझना।

हर कोई गुण अपने में रखता,
जौहरी ही बस परख उसे पाता।

जो संतुलन जीवन में रखता,
दृढ़ पग संग वह बढ़ते जाता।

गुणहीन नहीं कोई होता,
बस वक्त जो खेल दिखाता।

पल में दुख बिसराते सारे,
एक पल में कभी बहुत है मिलता।

रखो संतुलन अपने जीवन में,
वहीं लक्ष्य संग मंजिल देता।

जो मंजिल मानव को मिलती,
सारी खुशियां वह पा जाता

सीता गुप्ता, दुर्ग, छत्तीसगढ़

## अंधेरा

आँख वाले राजा ने
अंधी प्रजा से कहा -
देखो, उधर हरियाली है।
प्रजा ने जोर से तालियाँ बजाई।
और हुँकार भरी - जी हुजूर।
राजा ने कंकड़ों के ढेर की ओर इशारा किया
देखो, वहाँ अकूत खजाना बिखरा पड़ा है।
जी भरकर इकट्ठा कर लो।
प्रजा उधर ही दौड़ पड़ी
और राजा की जय-जयकार कर
आसमान को गुँजायमान कर दिया।
राजा ने सूखी नदी दिखाकर कहा -
देखो, लबालब पानी भरा है।
जाओ, उसमें छलाँग लगाओ।
प्रजा बोली - जो हुक्म मेरे आका।
और प्रजा, नदी में डूबकर मर गयी।

विजयानन्द विजय

## जैसे मौसम,...

धीरे-धीरे सब कुछ बदल जाता है,
जैसे मौसम
बिना किसी शोर के
पेड़ों से उनका हरा रंग ले लेते हैं।

घर वही रहता है,
पर आँगन की हँसी बदल जाती है,
और दीवारों पर टंगी तस्वीरें
धीरे-धीरे बीते समय की गवाही बन जाती हैं।

कुछ लोग जो कभी हर दिन का हिस्सा थे,
अब सिर्फ़ नामों की तरह याद आते हैं,
और कुछ आवाज़ें मन के किसी कोने में
धीमी प्रतिध्वनि बनकर रह जाती हैं।

समय बहुत सलीके से छीनता है सब कुछ—
चेहरों की चमक,रिश्तों की गर्माहट,
उम्मीदों की मासूमियत तक।
फिर भी सब समाप्त नहीं होता।

शेष रह जाती हैं बस यादें—
किसी पुराने गीत की तरह,
जो अचानक कहीं सुनाई दे जाए
और आँखों में एक पूरा मौसम उतर आए।

यादें...जो कभी रुलाती हैं,
कभी चुपचाप सहला देती हैं,
और कभी यह एहसास दिलाती हैं
कि बदल जाने के बाद भी
कुछ चीज़ें
हमारे भीतर हमेशा जीवित रहती हैं।

रश्मि अभ्या

## जाने कहाँ गए ओ दिन

आज अचानक ही
एलबम में लगी तस्वीर पर आकर वीणा की आँखें ठहर गई।

बंद आँखों के सामने हम भाई बहन के साथ पड़ोसी ,बचपन के प्यारे मित्रों की टोली।
रेत खोदती रिया और घर बनाता राघव, साथ में रिया का नन्हा भाई रेत जोड़कर रखता जा रहा है।
तब हम दोनों भाई बहन घरौंदे के सहयोगी
कितने करीब रहते,हमारे ये साथी, जिनके बिना हमारे दिन अधूरे, रातें लंबी लगती थीं।
जाने कहाँ चले गए सब अपनापन छोड़।
वो सुख भरे दिन जब पाँच लोग मिलकर एक पारले जी पर झपट पड़ते थे।
गाँव के नीम की छाया में बाटी खेलते , तालाब में डुबकी लगा तैरते फिर रेत के घरों में बैठे पलो में पूरी जिंदगी जी लेते।
आज हाथों में मोबाइल बिना संवेदना की एक इमोजी ने दिल से जुड़े रिश्तों की मिठास भी छीन गई।
वो मित्र और भाई प्यारा रिया राघव छोटू सब अपनी राह चल दिए।
हाथ में एलबम पकड़ी वीणा के दिल की वेदना आँसू बन चित्र में टपके वह सोचती रह गई पीपल की छाँव कमल की डंडी और सिंघाड़े के काँटों से निकले कोमल कंद मिलकर कितने साल बीते अपनत्व भरे मधुर यादों की टीस के साथ रो पड़ी यह कहते जाने कहाँ गए ओ दिन तभी दरवाजे पर घंटी की आवाज़ ने वीणा का ध्यान भंग कर दिया।

अमितारवि दुबे©®

www.antrashabdshakti.com
संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
वारासिवनी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

वेब अंक
रविवार, 31 मई 2026

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

# शब्दों की उड़ान...

**"जब शब्द केवल कागज़ तक सीमित न रहें, बल्कि दुनिया के हर कोने तक पहुँचने लगें—वहीं से एक नई उड़ान शुरू होती है।"**

इसी विश्वास और साहित्य-साधना की भावना के साथ **1 अप्रैल 2026** को अन्तरा शब्दशक्ति के साहित्यिक वेब मंच की शुरुआत हुई। इस नई पहल का विधिवत लोकार्पण **10 अप्रैल 2026** को आयोजित भव्य कार्यक्रम **"उड़ान – अन्तरा शब्दशक्ति की..."** में सम्पन्न हुआ।

**इस गरिमामयी अवसर पर साहित्य अकादमी के निदेशक डॉ. विकास दवे, वरिष्ठ साहित्यकार आ. मुकेश दुबे, पूर्व मंत्री आ. प्रदीप जायसवाल, संस्था की संरक्षक डॉ. भारती सुराना (स्त्री रोग विशेषज्ञ) तथा श्री गुलाबचंद देशलहरा की प्रेरक उपस्थिति ने इस साहित्यिक यात्रा को नई ऊर्जा प्रदान की।**

आप सभी का स्नेह, सहयोग और आशीर्वाद इस साहित्यिक यात्रा को निरंतर शक्ति और प्रेरणा प्रदान करता रहे।

## हमारा विश्वास

1. **यह केवल एक मंच नहीं है,**
2. **यह उन सपनों, भावनाओं और शब्दों की उड़ान है,**
3. **जो दिल से निकलकर समाज और संसार तक पहुँचना चाहते हैं।**
4. **हर रचनाकार एक दीप है,**
5. **और अन्तरा शब्दशक्ति उन दीपों के प्रकाश को दूर-दूर तक पहुँचाने का एक विनम्र प्रयास।**

## अन्तरा शब्दशक्ति का संकल्प

1. **डायरी के निजी भावों को विश्व पटल तक पहुँचाना।**
2. **हिन्दी भाषा और साहित्य को जन-जन के हृदय से जोड़ना।**
3. **नवोदित एवं वरिष्ठ रचनाकारों को समान अवसर प्रदान करना।**
4. **डिजिटल युग में साहित्य को सहज, सुलभ और जीवंत बनाना।**
5. **साहित्य के माध्यम से संवेदना, सृजन और संवाद को नई दिशा देना।**

**सादर**
**डॉ. प्रीति समकित सुराना**
**संस्थापक एवं संपादक**
**अन्तरा शब्दशक्ति, वारासिवनी (म.प्र.) – 481331**

## 1 मई 2026 — वेबअंक में प्रकाशित रचनाकारों की सूची

### 1 मई 2026
सरस दरबारी

### 2 मई 2026
सरस दरबारी

### 3 मई 2026
- सुधा गोयल
- विभा वर्मा
- राजेश देशप्रेमी
- विवेक कविश्वर

### 4 मई 2026
- उषा श्रीवास्तव 'उषा राज'
- मधु टाक
- बुशरा तबस्सुम
- रेखा शाह आरबी

### 5 मई 2026
- चौ. मदन मोहन समर
- कृष्ण भारतीय

### 6 मई 2026
- विवेक दुबे
- प्रीति धीरज जैन 'धीरप्रीत'
- वंदना सिंह 'त्वरित'

### 7 मई 2026
- अटल कश्यप
- डॉ पवन कुमार पाण्डेय
- शैली भागवत 'आस'

### 8 मई 2026
- मुकेश कुमार सिन्हा
- पद्मा मिश्रा
- हरिवल्लभ शर्मा 'हरि'

### 9 मई 2026
- मुकेश दुबे
- गुलशन प्रेम

### 10 मई 2026
- विभा रानी श्रीवास्तव
- राजेन्द्र पुरोहित

### 11 मई 2026
- दिलीप मेवाड़ा
- विजय शंकर प्रसाद
- आरती शर्मा
- पूजा राठौड़

### 12 मई 2026
- डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त'
- चिराग जैन चैतन्य
- आशु मिश्रा

### 13 मई 2026
- प्रणव राज
- शन्नो अग्रवाल
- रीति झा
- डॉ. हरविंदर कौर होरा

### 14 मई 2026
- जानकीप्रसाद विवश
- प्राणेंद्र नाथ मिश्र
- सपना चन्द्रा

### 15 मई 2026
- अनिता रश्मि
- डॉ. राधा दुबे
- दीपशिखा सागर

### 16 मई 2026
- सीमा अग्रवाल
- देवेंद्र सिंह
- किरण मोर
- रजनी दवे
- कंचन तिवारी 'कशिश'

### 17 मई 2026
- मुकेश दुबे
- अजय श्रीवास्तव 'मदहोश'
- किशोर छिपेश्वर 'सागर'

### 18 मई 2026
- केदानाथ शव्द मसीहा
- रश्मि स्थापक
- खुशी प्रयागराज
- चुनू साहा पाकुड़ झारखंड

### 19 मई 2026
- डॉ सुनीता सुमन
- ऋतु अग्रवाल, मेरठ
- कमला अग्रवाल गाज़ियाबाद
- सुमन अग्रवाल 'सागरिका' आगरा

### 20 मई 2026
- रश्मि सहाय
- दीप्ती जैन
- विनय पंवार
- शुचि मिश्रा

### 21 मई 2026
- आकांक्षा प्रिया
- दिनकर राव दिनकर
- डॉ. कृष्ण कन्हैया बर्मिंघम इंग्लैंड

### 22 मई 2026
- योगी नारायणनाथ इटहरी, नेपाल
- प्रदीप कुमार अरोरा, पुणे
- क़ासिम बीकानेरी

### 23 मई 2026
- संदीप नेमा दीप, भोपाल
- रुचि बाजपेयी शर्मा
- अनुपमा शर्मा रुड़की
- दिलीप आचार्य सोमेश्वर बांसवाड़ा
- दिनकर राव दिनकर वरासिवनी

### 24 मई 2026
- तेजेंद्र शर्मा, लंदन

### 25 मई 2026
- शिवानंद सहयोगी, वाराणसी
- सुभाष पाठक जिया
- नंदिता तनूजा, लखनऊ
- दीपिका मोयल दीप, जोधपुर
- एलिजा कुमारी, बेगूसराय
- कपिल कुमार, बेल्ज़ियम

### 26 मई 2026
- संतोष कुमार द्विवेदी
- उमानाथ त्रिपाठी
- दिलीप आचार्य "सोमेश्वर"
- पद्मा मिश्रा, जमशेदपुर

### 27 मई 2026
- डॉ. विजयानन्द 'विजय', बक्सर
- प्रणव राज, कैमूर
- प्रा. गायकवाड़ विलास, लातूर
- किशोर छिपेश्वर 'सागर', बालाघाट

### 28 मई 2026
- सपना परिहार
- सुभाष पायक "ज़िया"
- एम. डी. एस. रामालक्ष्मी
- मुकेश कुमार सिन्हा

### 29 मई 2026
- संदीप नेमा 'दीप'
- मनोज जैन 'मधुर'

### 30 मई 2026
- प्रदीप कुमार अरोरा, पुणे
- विशाखा शिंघल
- नवीन माथुर पंचोली